प्रकृति-माता स्वास्थ्य-प्रदाता

लेखक :

शो. स्वामिनाथ

प्रकृति-माता—स्वास्थ्य-प्रदाता

लेखक :

शे. स्वामिनाथ

प्रकाशक :

निचर–क्योर पब्लिशिंग हाउस
गणेशनगर
पुदुक्कोट्टाई (तमिल नाड)
(पिन : ६२२००१)

मूल्य] १९८६ [दस रुपये

प्रथम संस्करण १९८३ (२००० प्रतियां)

नेचर-क्योर पब्लिशिंग हाउस, गणेशनगर, पुदुक्कोट्टाई, द्वारा प्रकाशित तथा शर्मास् सानटोरियम् प्रेस, पुदुक्कोट्टाई, में मुद्रित

श्री सद्गुरुपरमात्मने नमः

प्रकृतिं मातरं वन्दे लक्ष्मणं च महागुरुम्
आरोग्यशास्त्रवक्तारं आयुरैश्वर्यसंपदाम् ॥
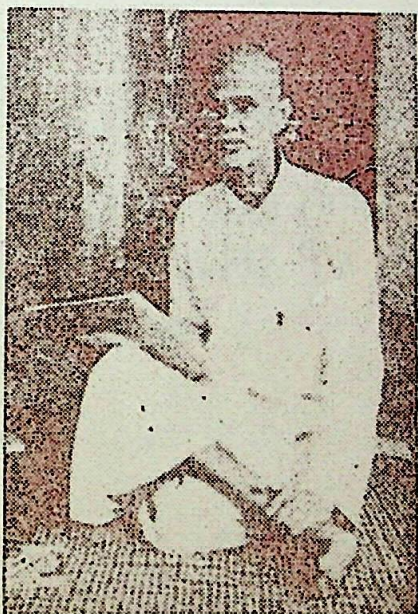
आचार्य लक्ष्मण शर्माजी

श्री सद्गुरुपरमात्मने नमः

परमहंस स्वामी शिवानन्द सरस्वती

नमो महात्मने तुभ्यं सच्चिदानन्दरूपिणे ।
नमोऽस्तु गुरवे तुभ्यं एतदस्तु शिवाऽर्पणम् ॥

समर्पण

यह पुस्तक

परमहंस श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज

(संस्थापक-अध्यक्ष, दिव्य जीवन संघ, ऋषिकेश)

के पावन चरणों में

सादर समर्पित

करते हैं

प्रस्तावना

हमारा श्रद्धापूर्ण नमन उस परम दिव्य ज्योति को, उस अलौकिक सत्ता को, जो विश्व के कण-कण में मुखरित है, जो विश्व के प्रत्येक प्राणी-अप्राणी में व्याप्त है, जो समस्त सुख-शान्ति का अक्षय भण्डार है।

नत मस्तक प्रणाम और वन्दना उन गुरुवर को जिनके मंगलमय मार्ग दर्शन से इस परम पावन अलौकिक दिव्य ज्योति की अनुभूति होती है।

परम पिता और गुरु महाराज का सर्वोच्च आशीष पाये हैं श्री शे० स्वामिनाथन् जिनकी रचना सुमन है—"प्रकृति माता स्वास्थ्य-प्रदाता"। उनकी ओजपूर्ण लेखनी ने स्वास्थ्य सद्विद्या रूपी सागर को गागर में भर दिया है क्योंकि वह प्राकृतिक स्वास्थ्य विज्ञान के प्रख्यात प्रवक्ता भी है और इसका साक्षात् मूर्तिमान स्वरूप भी।

इस अमूल्य पुस्तिका के पाठक भी परम दिव्य ज्योति की अनुकम्पा एवं आशीष प्राप्त करें।

असीम है मेरी प्रसन्नता कि इस अमूल्य पुस्तिका की प्रस्तावना लिखने का सौभाग्य मैंने पाया।

जीवन में सब प्रकार की सफलता की आधार-शिला है स्वास्थ्य अर्थात् निरोगी काया। उपयोगी जीवन की कुञ्जी है आरोग्य और सुखी जीवन का सार है आरोग्य। यही तो एक मात्र साधन है जिसके द्वारा जीवन के चारों पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—सिद्ध होते हैं।

मानव शरीर की प्राकृतिक-नैसर्गिक अवस्था का ही दूसरा नाम है "आरोग्य" और इस प्राकृतिक-नैसर्गिक अवस्था से अस्थाई रूप में अलग हो जाने को कहते हैं "रोग"। स्वास्थ्य सद्विद्या की सहायता से आरोग्य अवस्था पुनः प्राप्त हो जाती है। अतः स्वास्थ्य सद्विद्या वह पावन प्रक्रिया है जिससे हम लुप्त प्राकृतिक-नैसर्गिक अवस्था को पुनः पा लेते हैं। शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य आरोग्यमयी यह प्राकृतिक-नैसर्गिक अवस्था ही हमारी अक्षय निधि है। इसका एक मात्र स्रोत है हमारी प्राणशक्ति, जो अभिन्न अंग है उस सर्वशक्तिमान का, जो हमारे शरीर-मन-आत्मा का प्रत्येक विकार नष्ट कर हमें अखण्ड स्वास्थ्य एवं अक्षय प्रसन्नता प्रदान करने में सक्षम है।

अखण्ड आरोग्य और अक्षय प्रसन्नता का पावन मार्ग सरल है—दोषपूर्ण आहार-आचार-विचार का त्याग तथा प्राकृतिक आचार संहिता का निष्ठापूर्वक पालन।

इस जीवन चर्या का शुभारम्भ होते ही प्राणशक्ति का चमत्कार प्रकट होता है और हम सहज ही पा जाते हैं अखण्ड आरोग्य का अनमोल वरदान।

प्रबुद्ध पाठक वर्तमान पुस्तिका में पायेंगे इसी मनोहारी अखण्ड आरोग्य प्रदायिनी स्वास्थ्य सद्विद्या के सुखद सिद्धान्तों की सरल सुन्दर व्याख्या।

साधुमना रचनाकार ने इस पुस्तिका द्वारा हिन्दी भाषी प्रबुद्ध पाठकों का जो उपकार किया है, उसका प्रत्यक्ष अनुमान तो उन्हें होगा जो इसका निष्ठापूर्वक स्वाध्याय करेंगे और फिर श्रद्धापूर्वक इस सद्विद्या को जीवन में ढालेंगे।

विद्वान रचनाकार ने पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज से आशीष का अक्षय कोष पाया था। अतः मेरा पूर्ण विश्वास है कि इस उपयोगी पुस्तिका के पठन-मनन से अनेकानेक पाठकों का हित साधन होगा। मेरी हृदयगत कामना है कि इस पुस्तिका का अधिकाधिक प्रचार प्रसार हो और यह राष्ट्रीय स्वास्थ्य उन्नत करने वाली ज्योति शिखा जले।

साधुमना रचनाकार के निष्काम कर्मयोग का यह अद्वितीय सुमन निस्सन्देह आपके जीवन को सुगन्धित-पुनर्मित करेगा।

वे सभी भद्रजन भी परमपिता की असीम अनुकम्पा के भागीदार हैं जिनका इस उपयोगी पुस्तिका के प्रकाशन में तनिक भी योगदान रहा है।

परमपिता की असीम अनुकम्पा से आप सभी अखण्ड आरोग्य एवं दीर्घायु पायें।

प्रभुसेवक
स्वामि चिदानन्द
ॐ

शिवानन्दाश्रम,
ऋषिकेश,
७ अप्रैल १९८६

प्रस्तावना

परमहंस श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती और परमपूज्य प्रणव ब्रह्मेन्द्र आनन्द सरस्वती ने १९५२ में मुझे आदेश दिया था कि मैं आचार्य श्री लक्ष्मण शर्मा जी के मार्गदर्शन में प्राकृतिक चिकित्सा का अध्ययन करुं। इस से पूर्व इन्हीं महात्माओं ने मुझे समर्पित सेवामयी जीवन की दीक्षा दी थी।

आचार्य जी ने कृपापूर्वक मुझे शिष्य के रूप में ग्रहण किया और प्राकृतिक चिकित्सा की समुचित शिक्षा प्रदान की। फिर उन्होंने मुझे आदेश दिया कि मां प्रकृति का स्वास्थ्य-सन्देश निष्काम भाव से घर घर पहुंचाना है।

तभी से मैं गुरुवर के पावन आदेश को निष्ठापूर्वक पालन कर रहा हूँ और समर्पित भाव से मौलिक प्राकृतिक चिकित्सा कक्षायें तथा प्रवचन मालाओं द्वारा देश के विभिन्न भागों में प्राकृतिक जीवन द्वारा स्वस्थ रहने की कला और रोगों से स्वास्थ्य-लाभ का प्रचार मैं ने किया है। १९५२ से ही मैं नियमित रूप से "लाइफ़ नैचुरल" के लिए भी लिखता आ रहा हूँ। यह पत्रिका प्राकृतिक चिकित्सा के मूलभूत सिद्धांतों की परिचायिका है और पुदुक्कोट्टाई (तमिल नाड) से अंग्रेज़ी-हिन्दी में प्रकाशित की जाती है। मन्द और मारक रोगों से पीड़ित हज़ारों लोगों ने इस स्वास्थ्य-सुख-दायिनी विद्या—प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धांतों की सहायता से पुनः स्वास्थ्य-लाभ किया है और आज भी गुरुवर की अनुकम्पा से मंगल प्रयास चल रहा है।

देश के विभिन्न भागों में रहने वाले मित्रों का और उत्तरी भारत के निवासी स्नेही जनों का विशेष रूप से यह प्रेम आग्रह रहा है कि उनके लाभ हेतु हिन्दी में एक पुस्तक का प्रकाशन हो जिसमें प्राकृतिक चिकित्सा के मूलभूत सिद्धांत सरल भाषा में प्रस्तुत किये जाएं। यह पुस्तिका उसी प्रेमाग्रह के परिणाम स्वरूप प्रकाश में आई है।

एक और पुस्तक प्राकृतिक चिकित्सा: सिद्धान्त और प्रयोग भी साथ साथ प्रकाशित हो रही है। उसमें प्राणायाम, वायु स्नान, सूर्य स्नान, मेरुदण्ड स्नान, कटि स्नान, अहिंसक एनिमा आदि प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति की विभिन्न उपचार-विधियां समझाई गयी हैं। रोगों से बचाव और रोगों से बिना दवा उपचार की भी चर्चा हुई है। मांसाहार स्वास्थ्य के लिए हानिकारक क्यों है और स्वास्थ्य प्रेमी अण्डों का भी सेवन क्यों न करें तथा शुद्ध प्राकृतिक सात्विक आहार का सेवन करें तो बिना दवा के भी कैसे पूर्णतः स्वस्थ रह सकते हैं — इनका विस्तृत विवरण उस पुस्तक में आप पायेंगी।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि ये दोनों पुस्तकें देश के विभिन्न भागों में पहुंच कर अनेकों लोगों को प्राकृतिक चिकित्सा से लाभान्वित होने की पावन प्रेरणा प्रदान करेंगे।

पुदुक्कोट्टाई,
दिनांक ३ अप्रैल १९८६

शे. स्वामिनाथ

विषय-सूची

अध्याय–१

स्वास्थ्य और रोग

सत्यं च शोभनं शुद्धं पराधीनत्वमोचकम् ।
सर्वेषां सुगमं चेति शास्त्रमेतत् विशिष्यते ॥

विश्वव्यापी शक्ति को प्रणाम

प्राणी-मात्र में विराजमान विश्वव्यापी शक्ति को प्रणाम। जड़ तत्वों को चेतना प्रदान करनेवाली उस उच्चतम बुद्धि को नमस्कार, जो हमारे शरीर की अन्तर्ज्योति है।

उस गुरु तत्व को भी वन्दन जिसमें आत्म-समर्पण करके ही जिज्ञासुओं को सम्पूर्ण ज्ञान, समृद्धि और स्वास्थ्य का वरदान मिलता है।

आइए, अब हम स्वास्थ्य-शास्त्र की चर्चा करें। सही और संयमित रहन-सहन का वरदान है स्वास्थ्य और इसके विपरीत जीवन-नियमों के उल्लंघन का दण्ड है रोग।

स्वास्थ्य क्या है?

स्वास्थ्य प्राणयुक्त शरीर की उस अवस्था का नाम है जिसके द्वारा प्राणी शब्दातीत आनन्द का अनुभव करता है।

जैसे चेतना के बहुत से स्तर हैं, वैसे ही स्वास्थ्य के भी भिन्न भिन्न स्तर हैं। अपने जीवन में प्रतिदिन सही स्वास्थ्य-स्तर

पर अग्रसर होनेवाला व्यक्ति ही वास्तव में बुद्धिमान है। स्वास्थ्य की छाया-मात्र से—जिसे श्रीयुत एलेक्सिस कैरल ने "कृत्रिम स्वास्थ्य" की संज्ञा दी है—सन्तुष्ट रहनेवाले और कष्टपूर्ण लक्षणों से मुक्त रहने को ही स्वास्थ्य माननेवाले व्यक्ति हतबुद्धि हैं।

पीड़ायुक्त लक्षणों से मुक्त रहना ही स्वास्थ्य नहीं। स्वयं को सदा स्वस्थ अनुभव करने वाले तथा रोग-भय से मुक्त व्यक्ति ही वास्तव में स्वस्थ हैं।

जिस प्रकार प्रकाश की उपस्थिति में अन्धेरे का अस्तित्व नहीं रह जाता, उसी प्रकार स्वास्थ्य-पथ पर अग्रसर व्यक्ति को रोग का भय या आशंका नहीं रहती।

रोग-भय का अर्थ है अन्धकारमय अज्ञान। रोग को अनिवार्य मानकर यह सोचना कि प्रत्येक व्यक्ति का रोग-पीड़ित होना एक अवश्यम्भावी तथ्य है पराजय को अपनाना है। बुद्धिमान स्वास्थ्याभिलाषी के लिए ऐसा सोचना सर्वथा अनुचित है।

रोग क्या है?

रोग का अर्थ है शरीर और मन की विकारयुक्त अवस्था और इसका मुख्य कारण है दोष-पूर्ण रहन-सहन। रोग ऐसी कोई प्रकोप नहीं जो शरीर पर बाहर से आक्रमण करे।

जीवन के नियमों का निरन्तर उल्लंघन करते रहने से शरीर की भीतरी कार्यक्षमता नष्ट होती रहती है, उसकी प्राण-शक्ति का ह्रास होता रहता है तथा शरीर में आवश्यकतानुसार

बहुत-से परिवर्तन होते रहते हैं। ऐसी अवस्था में उसे रोगी घोषित कर दिया जाता है।

क्या रोग का कुछ नाम है? क्या रोग को नाम देने मात्रा से उसका निदान हो जाता है? क्या रोग एक है अथवा अनेक?

जैसे ही स्वास्थ्य-स्तर गिरता है वैसे ही एक या अनेक लक्षण प्रकट होने लगते हैं। इसका तात्पर्य है कि शरीर की कार्यक्षमता क्षीण हो रही है।

लक्षण मात्र ही रोग नहीं

लक्षणों के अनुसार रोग को एक नाम विशेष दे दिया जाता है। शरीर की कार्यक्षमता के ह्रास और उन लक्षणों के किसी अंग विशेष में प्रकट होने के अनुसार ये लक्षण बदलते रहते हैं। अतः रोग को नाम मात्र देने से ही क्रियाशीलता में ह्रास होने के कारण का पता नहीं चल जाता।

किसी रोग के निदान के लिए कार्यक्षमता के बिगड़ने के कारण का ज्ञान होना परमावश्यक है। ऐसा होने पर ही रोगी अपनी देखभाल ठीक ढंग से कर सकता है।

दवाई के अभाव से रोग की उत्पत्ति सम्भव नहीं। यदि ऐसा हो तो दवाई सेवन करने से ही नष्ट हुआ स्वास्थ्य फिर मिल जाये और दवाई ही स्वास्थ्य प्राप्ति का साधन बन जाये।

रोग का नाम धरने से ही उसकी रोकथाम नहीं होती। यदी ऐसा हो तो रोग का नाम मात्र देना ही—जिसे रोग का पता लगाने की क्रिया कहा जाता है—रोग दूर करने और स्वास्थ्य की प्राप्ति का साधन बन जाये।

लक्षण मात्र ही रोग नहीं। इसलिए कष्ट-दायक लक्षणों से मुक्ति पा लेने को ही रोगमुक्ति नहीं कहा जा सकता। दवाइयां केवल रोग के लक्षणों को दबाकर ही पीडा से 'आराम' दिला सकती है, परन्तु वास्तविक स्वास्थ्य और रोग-मुक्ति की दृष्टि से इसका कुछ भी महत्व नहीं।

स्वास्थ्य-स्तर का पतन ही वास्तविक रोग

स्वास्थ्य का पतन ही वास्तविक रोग है और स्वास्थ्य-स्तर को उन्नत करना ही रोग की असली चिकित्सा है।

सभी रोगों की पृष्ठभूमि में एक ही कारण हुआ करता है जिस तक कोई दवाई नहीं पहुंच सकती।

दवाइयों का सेवन करना अथवा ऐसे अन्य साधनों के पीछे दौड़ना इस बात का द्योतक है कि रोगी रोग के कारण से अनभिज्ञ है और अपनी हार स्वीकार करता है।

जिस प्रकार दवाइयां स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य को और अधिक नहीं बढा सकतीं वैसे ही वे स्वास्थ्य-प्राप्ति के विषय में रोगी की कुछ भी सहायता नहीं कर सकतीं।

प्राकृतिक चिकित्सा का आधार

अतः स्वास्थ्य का प्रथम नियम है कि दवाइयों का पूर्णरुप से तिलाञ्जली दे दें। प्राकृतिक स्वास्थ्य-सद्विद्या अथवा प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति में किसी प्रकार की दवाई का कोई भी स्थान नहीं।

प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली वास्तव में एक ऐसी प्रणाली है जिसमें मानव का संरक्षण प्रकृति द्वारा होता है। वह है दैवी देखभाल अर्थात् प्रकृति के आदेशानुसार मानव की देखभाल। इस स्वास्थ्यविद्या का आधार है प्रकृति के अटल नियम।

प्रकृति शक्ति है और ईश्वर सर्वशक्तिमान। प्रतिक्षण प्रकृति के अटल नियमों का पालन ही सच्च ईश-आराधना है।

इस प्रकार प्राकृतिक स्वास्थ्य सद्विद्या या प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली का आधार भौतिक न होकर दैवी है।

अध्याय—२

प्राकृतिक चिकित्सा—प्रामाणित जीवन-दर्शन

यावदायुरनुष्ठेयं शास्त्रमेतद्धि धीमता ।
रोगाभावेऽपि रोगेषु सत्स्वपि श्रद्धया सह ॥

प्राकृतिक चिकित्सा शास्त्र अन्य चिकित्सा प्रणालियों की भांति अन्ध विश्वास पर आधारित न होकर एक ऐसे प्रामाणित ज्ञानदर्शन पर निर्भर है जो समय की कसौटी पर खरा उतरा है। निस्सन्देह इसके अनुयायियों की संख्या बहुत थोड़ी है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि यह आधार विहीन है।

यह चिकित्सा विधि प्राणशक्ति के नियमों को ही अपना आधार मानती है जो सभी व्यक्तियों पर समान रूप से लागू होते हैं चाहे वे स्वस्थ हों या रोगी। यह ऐसा विज्ञान है जिसके नियमों का पालन स्वस्थ और रोगी दोनों कर सकते हैं। इसके नियमों पर चलकर रोगी नीरोग हो जाते हैं। रोग से मुक्ति पा लेने पर भी इनका पालन करने से उनके स्वास्थ्य में और अधिक वृद्धि होती है। संक्षेप में इसके द्वारा रोगी रोगमुक्त होते हैं तथा स्वस्थ स्वास्थ्य की ओर अधिक उन्नति कर सकते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा—जीवन-दर्शन

वास्तव में प्राकृतिक-चिकित्सा चिकित्सा-प्रणाली मात्र न होकर एक जीवन-दर्शन है। सभी स्वास्थ्य-अभिलाषियों के

सदा इसका अनुसरण करना चाहिये क्योंकि इसका ध्येय है सदा स्वास्थ्य-उन्नति। इस प्रणाली में किसी भी विष का प्रयोग नहीं किया जाता और न ही स्वास्थ्य-विरोधी प्रभावों को इसमें कोई स्थान है। अतः यह सभी के लिये है।

विवेकहीन व्यक्ति को ऐसा लगता है कि संसार में आतंक फैला हुआ और स्वास्थ्य तथा रोग आकस्मिक दुर्घटनाएं मात्र हैं और भाग्य पर निर्भर हैं। उसे इस सत्य पर विश्वास नहीं होता कि स्वास्थ्य के भी निश्चित नियम हैं। इनके अपने दैनिक जीवन में अनुसरण करने से ही स्वास्थ्य ठीक रह सकता है। इनका थोड़ा सा भी उल्लंघन करने से स्वास्थ्य की बड़ी हानि हो सकती है।

यदि अव्यवस्था ही संसार का नियम हो जैसा कि उपरोक्त "दुर्घटना", "आकस्मिक" और "भाग्य" शब्दों से प्रतीत होता है तो इसके बड़े विचित्र और गम्भीर परिणाम निकलेंगे। तब मानव शरीर का न तो कोई नियम होगा, न ही किसी प्रकार का क्रम होगा। न ही इसकी कोई निजी सूझ-बूझ होगी और न ही जीवन में अनुशासन का कुछ लाभ होगा।

कीटाणु आदि रोग का कारण नहीं

हमारे शास्त्रों का स्पष्ट रूप से यह मत है कि समूचा संसार व्यवस्थाबद्ध है। जिसे हम अव्यवस्था समझते है, वह वास्तव में भ्रान्त मन की ही उपज है। ऐसा मन अनुशासन और धर्म से शून्य है। वह "कारण" और "कर्म" के सिद्धान्त की सूक्ष्मता को नहीं समझता।

ऐसा भ्रान्त-चित व्यक्ति ही भूत-प्रेतों को रोगों का कारण मानते हैं, जैसा कुछ प्राचीन ज्ञानविहीन व्यक्ति मानते थे। कीटाणुओं तथा ऐसे ही अन्य सूक्ष्म जीवधारीयों को रोग का एकमात्र कारण मानना भी ऐसा ही है। उनकी धारणा है कि कीटाणु ही इस भूमि पर शैतान के दूत हैं जो मानव को क्षति पहुंचाते हैं।

ऐसे भ्रान्त-बुद्धि व्यक्तियों ने कुछ "जादू-टोनों" का आविष्कार कर रखा है। कीटाणुओं को नष्ट करने के लिए उनके पास अनेकों विष हैं। प्राचीन काल के भूत-प्रेतों में विश्वास रखने वाले चिकित्सकों की भांति वे इन्हें अपने अन्ध-विश्वासी रोगियों को सेवन कराते हैं। आज के रोगी भी इन "टोटकों" को सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं क्योंकि इनके सेवन का आदेश उन्हें ऐसे चिकित्सकों द्वारा दिया जाता है जो तकनीकी भाषा में बोलते हैं और इसी कारण उन्हें वैज्ञानिक समझा जाता है।

वर्तमान-युग में "कब्ज" को ही बहुव्यापी होने के कारण शरीर की सामान्य अवस्था की संज्ञा दी जाती है। ऐसे ही किसी आयुवर्ग के व्यक्तियों का बहुत अधिक संख्या में उच्च रक्त चाप से पीड़ित होने के कारण वह भ्रान्त व्यक्ति उस आयुवर्ग में ऊच्च रक्त चाप को भी असाधारण अवस्था नहीं मानते। किसी भी रोग को शरीर की सामान्यावस्था स्वीकार नहीं किया जा सकता, चाहे एक विशेष आयुवर्ग के कितने भी व्यक्ति इससे पीड़ित क्यों न हों।

रोग का कारण—प्रकृति के नियमों का उल्लंघन

प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करने और रहन-सहन के ग़लत ढंग को अपनाने से ही रोग बहुव्यापी रूप धारण करता है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि रोग-ग्रस्त होना एक अनिवार्य तथ्य है।

केवल स्वास्थ्य ही शरीर की सामान्यावस्था है। स्वास्थ्य के नियमों का उल्लंघन करने पर कष्ट-पूर्ण लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं। ये केवल इस बात का संकेत है कि स्वास्थ्य में विकार उत्पन्न हो रहा है।

बहुत अधिक मात्रा में आहार सेवन करना, ग़लत ढंग से भोजन करना, व्यायाम न करना, आराम और निद्रा का अभाव, प्रदूषित वातावरण में रहना, प्रदूषित वायु सेवन करना इत्यादि ये सब स्वास्थ्य के नियमों के उल्लंघन मात्र हैं। यही रोग की जड़ हैं। सच तो यह है कि स्वास्थ्य-स्तर में पतन ही एकमात्र रोग है।

विषैली दवाओं का सेवन निषेध

रोगावस्था में प्रकट होने वाले लक्षणों को ही रोग नहीं समझ लेना चाहिये जैसे "लाल रोशनी" तो आगे के खतरे का संकेत-मात्र है। इसे खतरे का कारण नहीं कहा जा सकता। क्योंकि लक्षण ही रोग नहीं, इसलिए इन लक्षणों को दबाने से ही रोग-मुक्ति नहीं हो सकती।

दवाइयों की सहायता से रोग के लक्षणों को दबाकर मानव स्वयं को सुरक्षित समझने लगता है और ऐसा करके उसे दोषपूर्ण रहन-सहन को बनाये रखने में प्रोत्साहन मिलता है। इन दवाइयों के सेवन से रोग के बाह्य लक्षण तो लुप्त हो जाते हैं, परन्तु रोग के लक्षणों के लिए उत्तरदायी तथ्य ज्यों का त्यों बने रहते हैं। इसीलिये हम प्राकृतिक पद्धति के अनुयायी सभी दवाइयों तथा विषैले तत्वों के दवा के रूप में प्रयोग किये जाने का विरोध करते हैं।

रहन-सहन के दोषों में (जिनके द्वारा शरीर की क्रिया-शीलता बिगड़ती है) सुधार करके ही शरीर से विकार को दूर किया जा सकता है। इसी कारण हमारा दृढ विश्वास है कि रहन-सहन के सुधार और सदाचार को अपना लेने पर ही स्वास्थ्य-प्राप्ति संभव है। इसका कोई दूसरा रास्ता नहीं।

जैसे पहले बताया जा चुका है स्वास्थ्य-स्तर में पतन ही एक मात्र रोग है। अतः स्वास्थ्य-स्तर की उन्नति ही रोग की समस्या का एक मात्र हल है।

रोग से "जूझना" अन्धकार से युद्ध करने के समान है। अन्धकार को दूर करने का केवल एक साधन है और वह है प्रकाश। प्रकाश का ही अस्तित्व है, अन्धकार का नहीं। प्रकाश हो जाने पर अन्धेरा स्वयं ही दूर हो जाता है। ऐसे ही रोग का भी निजी कोई अस्तित्व नहीं। स्वस्थ रहन-सहन को अपना लेने पर रोग तुरन्त ही दूर हो जाता है। रोग-मुक्ति का अन्य कोई साधन नहीं।

अध्याय–३

रोगमुक्ति का साधन

स्वास्थ्य-स्तर में सुधार ही रोगमुक्ति

रोगमुक्ति का एकमात्र साधन भी शरीर की प्राणशक्ति ही है। विषैली दवाइयों के सेवन के पश्चात् रोगमुक्ति का वरदान मिलने पर भी इसका श्रेय दवाई को नहीं मिलना चाहिये। दवाई के सेवन के बिना भी रोगमुक्ति अवश्य मिल जाती। दवाई सेवन न करने से मिलने वाला आरोग्यता अतिनिर्भय, शीघ्र और पूर्ण होती और रोगी दवाइयों से उत्पन्न होनेवाले कुप्रभावों से भी बचा रहता।

रोगमुक्ति प्रदाता शक्ति शरीर के अन्दर ही है। यही प्राणशक्ति है। शरीर में प्राणशक्ति का जितना अधिक भण्डार होगा मानव स्वयं को उतना ही स्वस्थ और सजीव अनुभव करेगा। इसकी विपरीत बात भी समान रूप से सत्य है।

शक्ति-मितव्ययता का सिद्धान्त

प्रत्येक स्वास्थ्य-प्रेमी व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अपने दैनिक जीवन में शक्ति-मितव्ययता के सिद्धान्त का पूर्णरूप से पालन करे। प्राणशक्ति की सुरक्षा का बडा महत्व है। स्वास्थ्यानुकूल, वांछनीय और इसी प्रकार की अन्य स्वास्थ्य-वर्धक आदतों को अपनाकर और स्वास्थ्यविरोधी, अवांछनीय और बुरी आदतों को तिलांजलि देकर ही स्वास्थ्य-स्तर को बढ़ाया जा सकता है और स्वयं को रोग, दुर्बलता और विकारों से मुक्त रखा जा सकता है।

प्राणशक्ति ही शरीर और मन को क्रियाशील रखनेवाली एक मात्र शक्ति है। शरीर के अन्दर होनेवाली किसी भी भौतिक या रासायनिक क्रिया द्वारा यह शक्ति पैदा नहीं हो सकती और न ही बाहर के किसी साधन या पदार्थ से इसका उत्पादन सम्भव है।

वास्तव में शरीर में इस शक्ति के विद्यमान होने पर ही शरीर अपनी भिन्न-भिन्न क्रियाओं को सम्पन्न करने योग्य बनता है।

शक्ति-व्यय के बिना कोई भी क्रिया सम्भव नहीं। प्रत्येक सजीव क्रिया में—चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक, आन्तरिक हो या बाह्यवर्ती, ऐच्छिक हो या अनैच्छिक—प्राणशक्ति व्यय होती है।

केवल ऐच्छिक क्रियाओं में ही शक्ति-व्यय नहीं होता बल्कि अनैच्छिक क्रियाएं भी शक्ति-व्यय के बिना नहीं होतीं। अतः प्राणशक्ति के व्यर्थ व्यय को रोकने के लिए प्रत्येक स्वास्थ्याभिलाषी व्यक्ति को सभी ऐच्छिक और अनैच्छिक क्रियाओं का यथासंभव घटाना होगा। प्रत्येक व्यक्ति को रहन-सहन की मूल आवश्यकताओं तथा अपने सामाजिक कर्तव्यों को ध्यान में रखकर इन क्रियाओं में कमी करनी चाहिये।

रोके प्राणशक्ति का व्यर्थ व्यय

अनैच्छिक क्रियाएं कई बातों पर निर्भर है जैसे आहार, जल इत्यादि के सेवन, मानसिक स्थिति, ज्ञान तन्तुओं के तनाव इत्यादि। उदाहरण के लिए अधिक मात्रा में आहार सेवन करने वाले, अन्य भोजन सम्बन्धी ग़लतियां करने वाले या चाय, काफी आदि उत्तेजक पदार्थों और विषैली दवाइयों के सेवन करने

वाले व्यक्तियों में शरीर की अनैच्छिक क्रियाएं बहुत अधिक मात्रा में होती है और ऐसा होने पर उनकी प्राणशक्ति का अधिक मात्रा में नाश होता रहता है।

इसी प्रकार बहुत सी अनावश्यक ऐच्छिक क्रियाएं भी हैं जिनके द्वारा प्राणशक्ति का व्यर्थ व्यय होता रहता है। किन्तु वास्तव में स्वास्थ्यवर्धक क्रियाओं में खर्च हुई शक्ति ही सार्थक है।

प्राणशक्ति का जितना भी अधिक व्यय अनावश्यक क्रियाओं में होगा उतनी ही कम प्राणशक्ति स्वास्थ्योपयोगी क्रियाओं के लिए उपलब्ध होगी। यही कारण है कि आहार का अधिक मात्रा में सेवन करने वाले व्यक्ति अधिक कामी, स्वयं को नियमित रूप से निरन्तर उत्तेजित करते रहने वाले तथा दवाइयों का प्रयोग करले रहने वाले व्यक्ति गहरी निद्रा के अभाव और पाचन सम्बन्धी रोगों से पीडित रहते हैं।

शरीर में प्राणशक्ति का उपयुक्त भण्डार होने पर (जैसे जीवन के आरम्भ में, बचपन और यौवनकाल में प्रायः होता है), ऐसे व्यर्थ शक्ति-नाश का आभास नहीं होता और न ही इससे उत्पन्न कुप्रभावों का कुछ पता चलता है। ग़लत रहन-सहन से उत्पन्न विकारों का पता यौवनावस्था बीत जाने पर ही लगता है जब यह प्राणशक्ति भण्डार काफी कम हो जाता है। चालीस-पचास वर्ष की आयु में होने वाले रोगों का बीज बीस-तीस वर्ष की आयु में की गई ग़लतियों द्वारा ही बोया जाता है।

शरीर में प्राणशक्ति का उपयुक्त भण्डार ही स्वास्थ्य का आधार है। जितनी अधिक मात्रा में प्राणशक्ति का नाश होगा, स्वास्थ्य भी उतना ही निम्न कोटि का होगा। आरम्भ में इसका

प्रभाव शरीर की कार्यशीलता पर पडता है परन्तु बाद में कुछ समय बीत जाने पर शरीर संस्थान को भी इससे हानि होती है। एक या एक से अधिक महत्वशाली अंग क्षतिग्रस्त हो जाने पर स्वास्थ्य-लाभ बडा कठिन हो जाता है।

प्रारम्भिक अवस्थाओं में कार्यक्षमता घटने पर और बाद में शरीर संस्थान को क्षति पहुंचने पर, शरीर गहरी नींद द्वारा आराम करने की क्षमता खो बैठता है। गहरी नींद की अभाव में शरीर और मन की क्रियाओं के लिए कम शक्ति उपलब्ध होने से स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पडता है।

अंगों की कार्यक्षमता को क्षति पहुंचने के फल-स्वरूप रोगी को जीवनयापन के लिए कम से कम काम करने पर भी एक बडी मात्रा में प्राणशक्ति खर्च करने की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार उसकी प्राणशक्ति का जल्दी जल्दी ह्रास होता चला जाता है।

अतः खोये हुए स्वास्थ्य के पुनर्लाभ, स्वास्थ्य को ठीक बनाये रखने और स्वास्थ्य उन्नति के लिए, शक्ति मितव्ययता के नियम का बड़ा महत्व है। इसके बिना कोई दूसरा साधन नहीं है।

शक्ति-मितव्ययता के नियम का पालन किए बिना स्वास्थ्य लाभ का प्रयत्न करना व्यर्थ है। दूसरे उपायों से स्वास्थ्य की अधोगति ही संभव है, प्रगति नहीं। इसलिए इस नियम का पालन करना अनिवार्य है। स्वास्थ्यवर्धक रहन-सहन के द्वारा ही स्वास्थ्योपार्जन संभव है। यह समझना कि दवाइयों द्वारा स्वास्थ्य-सुधार सम्भव है मृगतृष्णा मात्र है।

अध्याय-४

आत्मरक्षा—प्राणशक्ति की प्रवृत्ति

प्रत्येक प्राणयुक्त कोशाणु में आत्मरक्षा की एक अन्तर्जात प्रवृत्ति है। स्वास्थ्य के उच्च-स्तर की स्थिति में यह सहज ज्ञान अधिकतम होता है। इसी प्रवृत्ति के कारण प्रत्येक जीवित कोशिका अपना निर्धारित कार्य ठीक ढंग से करने में समर्थ रहती है। ऐसी दशा में ही कोशाणुओं की उन सभी पदार्थों को अपनाने की क्षमता बनी रहती है जो उनके लिए उपयोगी हैं, और जिनकी उन्हें अपने कार्य के लिए आवश्यकता होती है। स्वास्थ्य की स्थिति में ही वे उन सभी तत्वों को अस्वीकार करते तथा शरीर के बाहर निकाल फेंकते हैं जो उनके लिए हानिकारक हैं।

प्राणशक्ति का व्यर्थ नाश न होने देने, रहन-सहन का उपयुक्त ढंग अपनाने तथा जीवित रहने के लिए सभी मूलभूत आवश्यकताओं के सन्तुलित और ठीक प्रकार से उपलब्ध होने पर ही कोशाणओं में यह सहज ज्ञान उच्चतम रूप में रहता है। ऐसा होने पर शरीर आन्तरिक तौर पर निर्मल और स्वस्थ रहता है।

प्राणशक्ति के व्यर्थ नाश होने पर आत्म संरक्षण की प्रवृत्ति का ह्रास होने लगता है। जैसे जैसे यह ज्ञान घटता है वैसे वैसे कोशाणुओं की स्वस्थ रहने की क्षमता—अर्थात् स्वास्थ्योपयोगी तत्वों को अपनाने तथा स्वास्थ्य-विरोधी पदार्थों से मुक्त रहने की शक्ति धीरे धीरे कम होने लगती है। ऐसी स्थिति में शरीर विजातीय मलपूर्ण द्रव्यों से भर जाता है। ऐसा व्यक्ति निरन्तर शरीर में भारीपन, बेचैनी और रोग का अनुभव करता है।

प्रत्येक कोशाणु की आत्मरक्षा की प्रवृत्ति का आधार है—स्वस्थ रहन-सहन। ज्यों ज्यों हम अपने रहन-सहन के दोषों को दूर करते हैं और सही और स्वास्थ्यवर्धक रहन-सहन को अपनाते हैं त्यों त्यों कोशाणुओं कीं अन्तर्जात प्रवृत्ति का अनावरण होता चला जाता है। इसके विपरीत, रहन-सहन के दोषयुक्त ढंग को अपनाने से इनकी इस प्रवृत्ति का ह्रास होता है।

स्वास्थ्य का आधार—रहन-सहन में आमूल संशोधन

हमारे सब काम—चाहे वे शरीरिक हों या मानसिक, बाह्य हों या आन्तरिक, ऐच्छिक हों या अनैच्छिक—स्वास्थ्य-वर्धक होते हैं या स्वास्थ्य-नाशक। स्वास्थ्य-उन्नति या स्वास्थ्य-ह्रास हमारे प्रतिदिन के कार्यों के समूचेपन पर आधारित है। इसका आधार केवल एक या दो कार्यमात्र नहीं। उदाहरणतः प्रातः काल का भ्रमण और प्रतिदिन कुछ समय के लिए व्यायाम करना अच्छी तथा स्वास्थ्योपयोगी आदतें हैं। परन्तु यदि कोई व्यक्ति स्वस्थ रहन-सहन की अवहेलना करके केवल प्रातः काल का भ्रमण या व्यायाम ही करता है तो वह स्वस्थ नहीं रह सकता।

तात्पर्य यह है कि समूचे रहन-सहन को स्वास्थानुकूल बनाया जाये, न कि केवल एक दो अच्छी आदतों को ही अपनाकर अन्य सभी नियमों का उल्लंघन किया जाये।

यदि हमारी रहन-सहन की आदतें समूचेपन की दृष्टि से स्वास्थ्य विरोधी हैं, तो हमारी शक्ति घटती ही जायगी। दोषपूर्ण रहन-सहन के कारण शक्ति नाश होकर शरीर के मलनिवारक अंग अपने निर्धारित कार्य को सन्तोषजनक ढंग से नहीं कर पाते और शरीर के अन्दर मल जमा होने लगता है।

बेचैनी शरीर में छुपे रोग का लक्षण है। यह वह स्थिति है जिसमें शरीर का मल इसके अन्दर जमा होने लगता है। इसका कारण हैं अपूर्ण मल-निवारण।

जब प्राणशक्ति इस प्रकार जमा हुए विजातीय विषैले द्रव्य को शरीर के बाहर निकालकर इसे निर्मल करने का प्रबल प्रयत्न करती है तभी रोग प्रत्यक्ष रूप में दिखाई देता है।

अप्रत्यक्ष रोग .

रोग के अप्रत्यक्ष होने पर इसके कोई ऐसे लक्षण विशेष नहीं होते जिन्हें देखकर कोई दूसरा व्यक्ति रोग की जाँच कर सके। परन्तु रोगी स्पष्टतया अपने आपको स्वस्थ अनुभव नहीं करता। रोग के अप्रत्यक्ष होने पर इसे कोई नाम-विशेष भी नहीं दिया जा सकता। किन्तु रोगी स्वयं भारीपन और शक्तिहीनता महसूस करता है। वह जानता है कि निद्रा से भी उसमें स्फूर्ति नहीं आती। वह भोजन भी भली प्रकार से पचा नहीं सकता। उसके शरीर का मल भी पूरी तरह से बाहर नहीं निकलता।

रोग के अप्रत्यक्ष होने की स्थिति में रोगी के शरीर में कुछ शक्ति रहती है जिसके द्वारा वह अपने दैनिक कार्य को किसी न किसी तरह करने में समर्थ रहता है, यद्यपि वह कार्य सन्तोषपूर्ण ढंग से नहीं होते। परन्तु रोग के प्रत्यक्ष होने पर यह बात नहीं रहती क्योंकि शरीर की समूची उपलब्ध शक्ति इसके मल को बाहर निकालने में जुट जाती है। यही उस संकट काल की पुकार होती है। फलस्वरूप शरीर उन सभी अङ्गों से कार्य को

धीमा करके या अस्थायी रूप से रोककर शक्ति को इस मल-निवारण क्रिया में लगा देता है। यही कारण है कि रोग के प्रत्यक्ष होने पर कमजोरी अनुभव होने लगती है।

तीव्र रोग

प्राणशक्ति के अभूतपूर्व रूप से शरीर के मल को बाहर निकालने के कार्य में जुट जाने से ही रोग के तीव्र लक्षण उत्पन्न होते हैं। परन्तु ये लक्षण ही रोग नहीं और न ही इन कष्टपूर्ण लक्षणों से आराम पा लेने को रोगमुक्ति कहा जा सकता है।

औसत व्यक्ति किसी भी प्रकार की बे-आरामी, कष्ट या पीडा को पसन्द नहीं करता और रोग के लक्षण तो पीड़ायुक्त होते ही हैं। इसलिए इस बेचैनी, कष्ट इत्यादि से ही उसकी शक्ति का शोषण होने लगता है। यही एक कारण है कि रोग की तीव्र स्थिति में अधिक कमज़ोरी अनुभव होती है।

प्रत्यक्ष रोग "कारण और प्रभाव" के सिद्धान्त का साक्षात्कार मात्र है। इस तथ्य को अच्छी तरह न समझने तथा यह सोचने से कि उसे बिना कारण ही कष्ट और पीडा मिल रही है मानव को ऐसा लगता है कि उसे बिना कारण के ही दण्ड दिया जा रहा है। उसे शिकायत होती है, परन्तु वह यह नहीं जानता किसके विरुद्ध? वह भाग्य, नक्षत्रों, कीटाणुओं, ऋतु इत्यादि सभी को कोसता है। उसकी दृष्टि में अपनी ग़लत आदत को छोड़ सभी दोषी होते हैं। रोग में अधिक पीड़ा अनुभव करने का यह भी एक अतिरिक्त कारण है।

परन्तु तथ्य केवल इतना ही है कि तीव्र रोग उत्पन्न होकर ही शरीर का मल बाहर निकलता है और वह शरीर को दोबारा

स्वच्छ बना देता है। परन्तु यह तभी सम्भव है जब प्राणशक्ति की मल-निवारक क्रिया में कोई हस्तक्षेप न किया जाये।

यद्यपि विषैली दवाइयों द्वारा चिकित्सा से पीड़ायुक्त लक्षणों में तुरन्त ही कुछ आराम मिल जाता है परन्तु वास्तव में ऐसी "चिकित्सा" के फलस्वरूप शरीर की शक्ति का ही ह्रास होता है।

इसके विपरीत प्राणशक्ति को यथासम्भव विजातीय द्रव्य को शरीर से निकालने, और प्रकृति को शरीर को स्वच्छ बनाने का अवसर प्रदान करने तथा प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली को अपनाने से ही स्वास्थ्य-स्तर में सुधार सम्भव है।

दवाइयों से रोग को न दबाएं। स्वास्थ्य का वरदान पाने के लिए स्वास्थ्यप्रद साधनों को अपनाएं

अध्याय-५

सांगीकरण और निष्कासन

प्राणशक्ति द्वारा शरीर अपने उन सभी सजीव कार्यों को करने में समर्थ होता है जो स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य है। इस शक्ति की किसी भी ज्ञात विधि द्वारा शरीर के अन्दर या बाहर उत्पत्ति नहीं की जा सकती।

शरीर में होने वाली मूल क्रियाओं को दो वर्गों में बांटा जा सकता है अर्थात् सांगीकरण और निष्कासन की क्रिया।

शरीर अपनी क्षमता के अनुसार इसे दिये गये भिन्न भिन्न पदार्थों (अर्थात् वायु, जल, आहार, सूर्य का प्रकाश इत्यादि) का ऊतकों के उत्पादन के लिए प्रयोग में लाता है।

जिन वस्तुवों का इस कार्य के लिए कुछ प्रयोग नहीं हो सकता उन्हें शरीर से बाहर निकाल फेंकना परमावश्यक है।

ऊतकों के उत्पादन और मल के निष्कासन की युगलक्रिया सन्तोषजनक ढंग से तभी संभव है जब उन पञ्च तत्वों से हमारा उपयुक्त सम्बन्ध हो जिनके द्वारा सृष्टि का निर्माण हुआ है और जिनके द्वारा हमारे शरीर की भी रचना हुई है। ये पञ्च तत्व हैं—आकाश, अग्नि, वायु, जल और पृथ्वी। इन तत्वों से ही अस्तित्व के लिए उपयुक्त स्थिति उत्पन्न होती है और इन्हीं के द्वारा वे तत्व प्राप्त होते हैं जिनसे शरीर के ढांचे की रचना हुई है।

सामान्य जीवन के लिए आवश्यक स्थितियों के मिलने पर, जिन्हें रहन-सहन की मूल आवश्यकताएं भी कहे जा सकते हैं,

स्वास्थ्य अनिवार्य है। इसके विपरीत इन स्थितियों को अभाव में रोग भी इसी तरह अनिवार्य है।

जीवन की मूल आवश्यकताएं

जीवन की मूल आवश्यकताएं हैं वायु, जल, आहार, सूर्य का प्रकाश, उष्णता, क्रियाशीलता, व्यायाम, विश्राम, निद्रा, स्वच्छता, विश्वास, प्रसन्न चित्त, सामान्य रहन-सहन, और उपयुक्त मानसिक स्थिति।

फेफड़ों में सांस द्वारा ले जायी गई वायु ही आक्सीजन का मुख्य साधन है। आक्सीजन की पोषण और जीवित रहने के लिए इतनी ही आवश्यकता है जितनी कैल्शियम, कार्बन इत्यादि की। शरीर को उपयुक्त मात्रा में आक्सीजन न मिलने पर शरीर की रचनात्मक क्षमता बिगड़ जाती है। केवल ताजी हवा से ही आक्सीजन आवश्यक मात्रा में प्राप्त होती है। ऐसा होना से ही स्वस्थ रहन-सहन सम्भव है। दूषित वायु में रहने और इसका सेवन करने पर रोगी हो जाना अनिवार्य है।

जल शरीर का एक मुख्य तत्व है। शरीर का लगभग दो तिहाई भाग जल ही है। शरीर का यह तत्व निरन्तर त्वचा के पसीनें, श्वास, गुर्दे के मूत्र, बड़ी आंत के मल और मुंह की थूक द्वारा नष्ट होता रहता है।

जल तत्व के ह्रास की पूर्ति के लिए आवश्यकतानुसार जल पीना चाहिये या इसे खाए हुए आहार के द्वारा ग्रहण करना चाहिये।

क्लोरीन या फ्लोरीन युक्त या अखाद्य खनिज तत्वों से भरपूर जल या सोड़ा, कोला पेय जैसे बोतल-बन्द पेय जिनमें तारकोल युक्त रङ्ग, सफ़ेद चीनी, कृत्रिम सुगन्धें, फास्फोरिक एसिड और बहुत से और विषैले तत्व मिले होते हैं या उत्तेजक पेय जैसे कॉफ़ी, चाय, कोको इत्यादि का सेवन त्याज्य है। प्यास लगने पर अज्ञानवश बहुत से लोग इन पेयों को जल के स्थान पर सेवन करते हैं। इनका इस प्रकार उपयोग करने पर शरीर के स्वास्थ्य का ह्रास होता रहता है।

आहार के विषय में जानकारी परमावश्यक

सभी स्वास्थ्याभिलाषियों को आहार के विषय में सभी आवश्यक बातों की जानकारी होनी चाहिए। बड़े दुःख की बात है ऐसे महत्वपूर्ण विषय के सम्बन्ध में विज्ञान की भाषा में बहुत ग़लत बातें कही जाती हैं। इसी के फलस्वरूप संसार भर में आज निर्जीव, शक्तिशून्य, और खाद्य खनिज तत्वों से विहीन, "साफ़" किये हुए आहार सेवन किये जा रहे हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि प्राणशक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती। अतः कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि आज चारों ओर रोग ही रोग दिखाई पड़ते हैं। प्रत्येक स्वास्थ्याभिलाषी को इस बात का पूरा ज्ञान होना चाहिये कि वह क्या खाए और क्या न खाए, कब खाए और कब न खाए, कितना खाए इत्यादि। निहित स्वार्थ आज हमें हमारे अज्ञान के कारण ही धोखा दे रहे हैं।

सूर्य से गर्मी के अतिरिक्त हमें "कुछ और" भी मिलता है। इससे हमारे सामान्य पोषण की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। परन्तु दुर्भाग्यवश आज के मानव को इस तथ्य का भी अच्छा पता

नहीं। स्वास्थ्य के लिये सूर्य स्नान अति उपयोगी है। स्वयं को इस मूल आवश्यकता से वञ्चित रखने पर उच्च कोटि के स्वास्थ्य का आनन्द सम्भव नहीं।

मानव शरीर का तापमान 98.4° फारनहीट के आस पास रहने पर ही इसकी सजीव क्रियाएं प्रभावशाली ढंग से हो सकती हैं। गर्मी और सर्दी दोनों ऋतुओं में सामान्य मानव शरीर अपनी उष्णता उत्पादक और उष्णता नियन्त्रक क्षमता के कारण अपने तापमान को इस स्तर पर रखने में समर्थ है। बहुत सी स्थितियों में शरीर के तापमान के बढ़ने की आवश्यकता पड़ती है। इस आवश्यकता की पूर्ति शरीर की निजी स्वचालित रचना के द्वारा ही हो जाती है। ऐसी स्थितियों में ताप बढ़ जाने से भयभीत होना व्यर्थ है। प्राकृतिक स्वास्थ्य के सिद्धान्तों का पालन करने और दवाइयों से दूर रहने पर शरीर का तापमान स्वयं ही साधारण हो जाता है।

ऐसे ही शरीर का तापमान साधारण तापमान से एक-दो अंश नीचे गिरने पर भी भयभीत होना व्यर्थ है।

तापमान के बहुत बढ़ जाने पर या घट जाने पर ही शरीर का अन्त हो सकता है।

शरीर के सीमतीत तापमान—सर्दी या गर्मी—को सहन करने से इसकी शक्ति का ह्रास होता है। इस स्थिति के अधिक समय तक रहने से शरीर कमजोर हो जाता है।

शारीरिक और मानसिक श्रम

क्रिया जीवन की एक मूल आवश्यकता है। इसी कारण कुछ भी परिश्रम न करने वाले व्यक्ति स्वास्थ्य के वरदान से

वञ्चित रहती हैं। परन्तु यह बात भी अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि लगातार अबाध रूप से कड़ा परिश्रम करते रहने से भी शक्ति-शोषण होता है। अतः स्वास्थ्य के लिये परिश्रम और विश्राम में उचित सन्तुलन की बड़ी आवश्यकता है। दीर्घकालीन शारीरिक परिश्रम (विशेषकर कड़ा परिश्रम) स्वास्थ्य की दृष्टि से अति हानिकारक है।

शारीरिक और मानसिक परिश्रम भी उसी सीमा तक करना चाहिए जितना कोई व्यक्ति सुगमता से करने में समर्थ हो। बहुत अधिक थकावट तक परिश्रम करते रहने से स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है।

बाहर से पदार्थों के शरीर में प्रवेश करने से शरीर के अंगों और ऊतकों में जो क्रिया होती है इसे ही कार्य (function) कहा जाता है। क्रिया में शक्ति का व्यय होता है। उत्तम शारीरिक और मानसिक क्षमता के लिए यह परमावश्यक है कि अनावश्यक कार्यों का त्याग किया जाए। अधिक मात्रा में आहार सेवन करने, दवाइयों और उत्तेजक पदार्थों का उपयोग करने, असंयमित विलासता, मानसिक तनाव इत्यादि से बचने का अर्थ है कि हम स्वास्थ्य लाभ और स्वास्थ्य सुधार के लिए शक्ति मित-व्ययता के सिद्धान्त पर ज़ोर देते हैं।

आज के युग में मानव की एक बड़ी संख्या को अधिक शारीरिक परिश्रम नहीं करना पड़ता। जिन्हें कुछ शारीरिक परिश्रम करना भी पड़ना है वह परिश्रम सारे शरीर के परिश्रम न होकर कुछ अङ्ग विशेषों तक ही सीमित होता है। इसका

परिणाम यह होता है कि शरीर के बहुत से अंगों को लगभग कुछ भी नहीं करना पड़ता। स्वास्थ्य के लिए इन सभी स्थितियों का सुधार होना आवश्यक है। यह उपयुक्त व्यायाम द्वारा ही संभव है। ऐसी स्थिति में व्यायाम न करने से तो दुर्बलता ही बढ़ेगी।

काम भी, आराम भी

काम की भांति आराम भी जीवन की एक मूलभूत आवश्यकता है। परन्तु किसी भी प्रकार का कठोर परिश्रम स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। लगातार दीर्घ काल तक कठोर परिश्रम—विशेषकर शारीरिक परिश्रम—करने वाले व्यक्ति भी अपने स्वास्थ्य से हाथ धो बैठते हैं।

अपनी क्षमता के अनुसार ही परिश्रम करना उचित है। इसके अतिरिक्त परिश्रम उकतानेवाला न होकर रुचिकर होना चाहिए।

जिन्हें किसी प्रकार का शारीरिक परिश्रम नहीं करना पडता उन्हें प्रतिदिन कुछ न कुछ व्यायाम अवश्य करना चाहिए। व्यायाम सर्वाङ्गी हो ताकि शरीर के सभी पट्ठों का व्यायाम हो जाये। जो व्यक्ति न तो कुछ शारीरिक परिश्रम करते हैं और न हो व्यायाम करते हैं उन्हें भी स्वास्थ्य से हाथ धोना पड़ता है।

विश्राम द्वारा परिश्रम की क्षमता बढ़ती है और परिश्रम करने पर ही आराम की अवश्यकता पड़ती है। परिश्रम से

थकावट का अनुभव होता है और विश्राम द्वारा थकावट से मुक्ति मिलती है। इस प्रकार विश्राम भी पोषण का एक बड़ा साधन है। परिश्रम के पश्चात् काफी आराम न करने पर स्वास्थ्य का सुधार सम्भव नहीं।

निर्मल तन-मन गाढ़ी निद्रा से

निद्रा जीवन की एक अन्य मूल आवश्यकता है। सुप्तावस्था में ही शरीर अपनी खोई हुई शक्ति को पाता है। निद्रा जितनी गहरी होगी शरीर को उतनी ही अधिक शक्ति मिलेगी।

मेदे में भारीपन होने पर, अपच रोग होने पर, शरीर के पट्टों में पीडा होने पर, पट्टों में, ज्ञान तन्तुओं में तनाव होने पर मीठी गहरी नींद असम्भव है।

निष्क्रियता ही निद्रा नहीं क्योंकि निद्रा एक क्रिया नहीं। इसके लिए स्वयं को तैयार करने की ज़रूरत नहीं पड़ती है। निद्रा स्वयं ही सहज भाव से आ जाती है।

निद्रा शरीर की निर्मलता पर निर्भर है। काया जितनी निर्मल होगी निद्रा भी उतनी ही गहरी और स्फूर्तिदायक आयेगी। अतः स्वास्थ्य का आदर करनेवाले व्यक्तियों को वास्तविक (प्राकृतिक) स्वच्छता का पूर्ण रूप से पालन करके देह को निर्मल रखना चाहिए। ऐसा होने पर ही वास्तविक निद्रा सम्भव है।

निद्रा निद्रा में अन्तर

दवाइयों द्वारा लायी गई "निद्रा" वास्तव में निद्रा नहीं, बल्कि मूर्छा के समान है। निद्रा के पश्चात् शरीर में ताज़गी

और हल्कापन अनुभव होता है। इसके विपरीत दवाइयों के द्वारा लाई गई "निद्रा" से शरीर में थकावट और भारीपन पूर्व की भाँति बना रहता है।

साधारणतः निद्रा की मात्रा परिश्रम के अनुसार ही होना चाहिये परन्तु यह नियम रोगियों के विषय में लागू नहीं होता। उन्हें निद्रा की काफी मात्रा में आवश्यकता होती है।

थकावट अनुभव होनें पर सोना या विश्राम करना उचित है। ऐसा न करके काम में लगे रहने से स्वास्थ्य का ह्रास होता है।

स्वच्छता और स्वास्थ्य

स्वच्छता भी स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। त्वचा पर गन्दगी जमा रहने से मन में बुरे विचार ही उत्पन्न होते हैं और उससे दुर्गन्ध आने लगती है। स्वास्थ्य के लिए ऋतु के अनुसार दिन में एक या दो बार स्नान अवश्य करना चाहिए।

गन्दे वस्त्र त्याज्य हैं। जिन वस्त्रों में से वायु नहीं गुजर सकती, वे पहनने योग्य नहीं।

अध्याय–६

मानव जीवन है त्रिवेणी

मानव की भौतिक आवश्यकताओं के बारे में पहले बताया गया है। परन्तु मानव शरीर मात्र न होकर तीन तत्वों अर्थात् शरीर, मन और आत्मा के मेल से बना है। इसलिए स्वस्थ रहने के लिए मन और आत्मा की ओर भी उचित ध्यान देना ज़रूरी है। अतः इनके विषय में कुछ बता देना परमावश्यक है। इनमें श्रद्धा मुख्य है।

श्रद्धा का अर्थ केवल अन्ध विश्वास नहीं। इसके साथ विवेक भी बड़ा जरूरी है अन्यथा ऐसा विश्वास जड़ विश्वास बनकर ही रह जायेगा।

श्रद्धा के साथ काम करने से शक्ति की सुरक्षा होती है। इसलिए श्रद्धा शक्तिमितव्ययका का एक बड़ा साधन है।

श्रद्धा का आधार है सत्य। जो बात सत्य नहीं उसमें श्रद्धा होना असम्भव है। विष सेवन को रोग निवारण का साधन मानना श्रद्धा के विपरीत है। यह केवल अन्ध विश्वास है। ऐसे ही ग़लत तथ्यों में श्रद्धा करना भी अन्ध विश्वास और मन का वहम मात्र है।

खाद्य तत्वों से विहीन मैदे की डबल रोटी को पोषण का साधन मान लेने पर उसमें शुद्ध आटे की रोटी के गुण नहीं आ सकते। सफ़ेद चीनी को जीवन की आवश्यकता समझकर सेवन करने से वह स्वास्थ्य-वर्धक खाद्य-पदार्थ नहीं बन जाती।

विषैली दवाई को रोग निवारण का साधन मानकर सेवन करने से वह हमारी मूल आवश्यकता नहीं बन सकती। ऐसे अन्ध विश्वासों को श्रद्धा की संज्ञा नहीं दी जा सकती।

जीवन का एकमात्र आधार

जीवन का एकमात्र आधार है ईश्वर। उसी की कृपा होने पर जीवमात्र का पालन होता है। निष्ठा से उसमें श्रद्धा रखने पर ही भक्त को महान शक्ति मिलती है। भगवान में श्रद्धा ही जीवन की आधर-शिला होनी चाहिए। श्रद्धालु व्यक्ति ही जीवन की उलझनों का साहसपूर्वक सामना करने में समर्थ होता है। वह कदापि डावांडोल नहीं होता क्योंकि दैवी-शक्ति की छत्र छाया में ही वह जीता है। निराशा से विमुक्त होने के कारण उसके ज्ञान तन्तु पूर्ण रूप से स्वस्थ रहते हैं। इसके विपरीत श्रद्धा से वञ्चित व्यक्ति मामूली संकट से भी घबरा जाता है और स्वयं को कमज़ोर बनाता रहता है।

जो व्यक्ति अभिमान के कारण नातिस्क बनकर यह समझता है कि वह सभी समस्याओं को स्वयं ही सुलझाने में समर्थ है, वह सदा असफल रहता है। जीवन कडुवे और मीठे अनुभवों, दुःख सुख और बहुत से अन्य द्वन्द्वों का मेल है। अपनी सीमित क्षमता को ही सर्वस्व माननेवाला व्यक्ति थोड़े से कष्ट से ही घबराकर व्याकुल हो जाता है।

मूल से उखड़े पेड़ का जीवित रहना असंभव है। इसके पत्ते जल्दी ही सूककर गिर जाते हैं। श्रद्धाविहीन व्यक्ति भी जड़ से उखड़े पेड़ की भांति है। वह स्वयं को खोखला-खोखला अनुभव करता है। उसके लिए जीवन निस्सार हो जाता है।

प्रकृति मूल रूप से कल्याणकारी है। इसमें विश्वास रखिए। प्राणशक्ति के मल-निवारक प्रयत्नों अर्थात् तीव्र रोगों का ग़लत अर्थ मत लगाइये।

प्रकृति शक्ति है और ईश्वर सर्वशक्तिमान। श्रद्धायुक्त व्यक्ति प्रकृति के नियमों का उल्लंघन नहीं कर सकता। इसके विपरीत प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करनेवाला व्यक्ति व्यर्थ में ही प्रार्थना करता है। श्रद्धापूर्वक जीवनयापन करना ही सर्वोत्तम प्रार्थना है। प्रतिदिन कुछ समय के लिये आराधना करने वाला, यदि अपने दैनिक जीवन में प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करता है तो ऐसा व्यक्ति स्वयं को धोखा देता है। उसकी आराधना व्यर्थ है।

प्रसन्नता—जीवन की मूल आवश्यकता

प्रसन्नता जीवन की एक और मूल आवश्यकता है। चित्त और स्वास्थ्य का बड़ा गहरा सम्बन्ध है। ये दोनों एक दूसरे पर निर्भर है।

स्वास्थ्य की हानि पहुँचानेवाली वस्तु से स्वास्थ्य-सुधार सम्भव नहीं है।

प्रकृति के नियमों के उल्लंघन द्वारा दुःख, क्लेश और रोग की वृद्धि ही संभव है। "भोगे रोगभयम्।"

संयम में दुःख और भोग में सुख समझने वाले व्यक्ति सचाई को नहीं जानते।

यह कहनेवाले कि "प्रसन्नता के साथ अस्वस्थ रहना भी 'दुःख' सहकर स्वस्थ रहने की अपेक्षा बेहतर है" केवल अपनी भोग-विलासता की मनोवृत्ति का प्रदर्शन करते हैं। उनका कथन कि "भूखे व्यक्ति को ही क्रोध आता है और पेट भरा व्यक्ति प्रसन्न चित्त होता है" इस बात का द्योतक है कि वे जीवन की वास्तविकता को न समझकर इसे बाहरी तौर पर ही देखते हैं और वे स्वस्थ्य और प्रसन्नता के सम्बन्ध को ठीक प्रकार नहीं समझते।

मूल आवश्यकताओं की पूर्ति, अपने आस पास के लोगों से अच्छे सम्बन्ध, निजी कर्तव्य के पालन और निष्ठापूर्वक अपने काम को करने से जो सन्तोष और हर्ष प्राप्त होता है इनसे स्वास्थ्य की वृद्धि होती है।

चिन्ता अनिवार्य नहीं

कुछ लोगों का विश्वास है कि जीवन में चिन्ता अनिवार्य है। यह मिथ्या है क्योंकि यदि ऐसा होता तो सब लोग आशा और जीवन-मोह का त्याग करके आत्महत्या कर लेते।

बहुत से व्यक्ति सदा इस बात से चिंतित रहते हैं कि अन्य लोगों को उनके विषय में क्या धारणा है। अपनी प्रसन्नता को दूसरों की धारणाओं पर आधारित करना कोई बुद्धिमत्ता की बात नहीं। ऐसी आदत बना लेने पर हम अपने चित्त की प्रसन्नता के स्वामी नहीं रह जाते। प्रसन्न रहने के लिये हमें दूसरों की धारणाओं का सहारा नहीं ढूंढना चाहिये।

किसी मानसिक चिंता का दबाव या ज्ञान तन्तुओं की शक्तिहीनता ही हमारी बहुत-सी चिंतापूर्ण भावनाओं के आधार होते हैं । मानव की एक बहुत बड़ी संख्या अपने वहम के कारण ही दुखी रहती है ।

कर्म ही आराधना

मन को काम में लगाइये । कर्म ही आराधना है । प्रायः अपने काम में अरुचि जीवन में क्लेशों के रूप में प्रकट होती है । अपने काम को दिलचस्पी से करने पर आप जीवन में क्लेशों के एक बड़े कारण पर विजय पा लेंगे ।

अपने दैनिक कार्य को भार समझकर न करें । अपने काम में रुचि पैदा करें । आवश्यकतानुसार अपनी एक मनचाही "हाबी" बनाएं । वह ऐसी हो कि आप उसमें स्वयं को भूल जाएं और उसके द्वारा अपने व्यक्तित्व का साक्षात्कार कर सके ।

स्वयं को जीवन की समस्याओं का सामना करने में अशक्त समझने पर ही चिंता मानव के व्यक्तित्व का अंग बन जाता है । बहुत से व्यक्ति सभी प्रकार की सुविधाएं होते हुए भी अपने को अभागा समझते रहते हैं । ऐसी मनोवृत्ति का स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है ।

चिंता करने से समस्या का कुछ भी हल नहीं निकलता । ग़लत का ग़लत परिणाम ही निकलता है । चिंतातुर विक्रेता अपनी कमिशन से भी हाथ धो बैठता है । चिंता से पीड़ित अधिकारी ग़लत आदेश ही देता है । एक चिंतित व्यक्ति अपने चारों ओर अव्यवस्था और कलह ही फैलाता है ।

चिंताओं को अधिक महत्व देकर उन्हें बढ़ावा नहीं देना चाहिये बल्कि सदा उनकी अवहेलना ही करनी चाहिये। ऐसा करने से वे समय के साथ ही लुप्त हो जायेंगी।

श्रीयुत बर्ट्रण्ड रस्सल के मतानुसार प्रसन्नता का रहस्य यह है कि अपनी रुचियों को अधिकाधिक विस्तृत बनाया जाए। यथासम्भव सभी व्यक्तियों और वस्तुओं के प्रति शत्रुतापूर्ण दृष्टिकोण को तिलांजी देकर मित्रतापूण स्वभाव अपनाइये।

अध्याय-७

अच्छी प्रवृत्तियां—स्वास्थ्य के लिए परमावश्यक

शरीर के समूचेपन को नष्ट करके इसे स्वस्थ रखना असम्भव है। इसके किसी भी महत्वपूर्ण अंग के निर्माणात्मक दृष्टि से कमजोर होने पर तथा ज्ञानतन्तुओं के, जो शरीर की भिन्न-भिन्न क्रियाकों में तालमेल बनाए रखती हैं, आन्तरिक रूप से थोड़ा सा भी दुर्बल होने की स्थिति में स्वास्थ्य का ठीक रहना कठिन है। शरीर के किसी भी अंग को शल्य क्रिया द्वारा काट कर निकाल देने पर अथवा एक या अधिक अंगों की क्रिया में रासायनिक साधनों द्वारा या बलात् हस्तक्षेप करने से शरीर की पूर्णता नष्ट हो जाती है। इसीलिए हम सभी को विषैली दवाइयों और शल्य चिकित्सा से दूर रहने की सलाह देते हैं।

निस्सन्देह कुछ विशेष स्थितियों में प्राणरक्षा के लिए शल्य चिकित्सा की आवश्यकता पड़ सकती हैं। परन्तु सभी प्रकार के रोगों में शल्य चिकित्सा का सहारा लेना बड़ी भूल है।

जिस प्रकार शरीर को स्वस्थ रखने और इसके स्वास्थ्य-स्तर में सुधार लाने के लिए इसके समूचेपन को स्थिर रखना जरूरी है, वैसे ही व्यवहार का भी बड़ा महत्व है। अच्छी प्रवृत्तियों का स्वास्थ्य से कितना गहरा सम्बन्ध है इस तथ्य की जानकारी भी परमावश्यक है।

स्वास्थ्य का आधार—संयम

स्वास्थ्याभिलाषियों को अपने जीवन में संयम और आत्म-अनुशीलता का आचरण करना चाहिए। उत्तम जीवन के अभिलाषी तथा उत्तम रहन-सहन को अपनानेवाले व्यक्ति शारीरिक और मानसिक व्याधियों से अतिशीघ्र और अच्छे ढंग से मुक्ति पा लेते हैं। रोगों का उनके व्यक्तित्व पर लेशमात्र भी बुरा प्रभाव नहीं पडता। इसके विपरीत जीवन का कोई भी ध्येय न रखने वाले व्यक्ति जीवन में अनिवार्य रूप से आनेवाले संकटों का सामना करने में बड़ी कठिनाई का अनुभव करते हैं। ऐसे व्यक्तियों पर इन संकटों की कुछ न कुछ छाप अवश्य पडती ही है। फलस्वरूप उसका सारा जीवन निराशा में ही व्यतीत होता है।

स्वास्थ्य की कामना करने वाले व्यक्ति को अपने दैनिक जीवन-क्रम पर उचित ध्यान देना चाहिए। तभी उनमें ऐसे बल की उत्पत्ति हो सकेगी जिसकी सहायता से वे कष्टों को सहन करके उन पर विजय पा सके।

जीवन के समूचेपन और आचरण का गहरा सम्बन्ध है। ईमानदार व्यक्ति के सभी व्यवहारों में निश्चलता और सचाई की सबक मिलती है। वह अपने कर्तव्यों के प्रति पूरी तरह से सजग रहता है। वह मानवता के सभी नियमों और सिद्धान्तों का पूर्ण रूप से पालन करता है।

ईमानदारी के अभाव की स्थिति में मन में हर समय द्वन्द्व और खिचाव बना रहता है। ऐसा व्यक्ति शारीरिक और मानसिक रोगों से पीड़ित रहता है। ऐसे व्यक्ति का अपनी मानसिक प्रवृत्ति और रहन-सहन में सुधार किए बिना रोग से मुक्ति पाना असम्भव है।

तन भी निर्मल मन भी निर्मल

जो सम्बन्ध मानसिक प्रवृत्तियों और ईमानदारी में है, वही सम्बन्ध स्वच्छता और शरीर में भी है। ईमानदारी का अर्थ मानसिक निर्मलता। जिस व्यक्ति में ईमानदारी का अभाव है उसका शरीर भी स्वच्छ नहीं रह सकता। ऐसे व्यक्ति का रक्त भी गन्दगी-पूर्ण होगा। उसके मल-निवारक अंग अपना निश्चित कार्य ठीक ढंग से न कर पायेंगे। उसकी भूख भी सामान्य न होगी। उसका शरीर भी खाए हुए आहार को ठीक प्रकार से ग्रहण न कर सकेगा।

निस्सन्देह ईमानदारी से जीवन व्यतीत करने पर शरीर की स्वच्छता काफ़ी हद तक ठीक रहेगी। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि शरीर की निर्मलता की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दें। भीतर की निर्मलता के साथ साथ उसे अपनी त्वचा की स्वच्छता की ओर भी उचित ध्यान देना चाहिए। नियमित रूप से स्नान करने, अपने आस पास के वातावरण को शुद्ध रखने और साफ़-सुथरे वस्त्र पहनने पर ही यह सम्भव है। शास्त्रों में बताये गये यम और नियम स्वस्थ रहने और स्वास्थ्य में सुधार लाने के लिए बड़े जरूरी हैं। रोगियों को भी स्वास्थ्य प्राप्ति के के लिए इनका पालन करते रहना चाहिये।

प्रागैतिहासिक काल में ही मानव प्रकृति के मार्ग से विचलित होने लगा था। वह अपने कौतूहल और आविष्कारों की खोज की उत्सुकता के कारण नई नई प्रवृत्तियों और विलासता की ओर अग्रसर हुआ था। इस तरह वह दोषपूर्ण जीवन-पथ पर बढ़ता गया। दीर्घ काल तक उसका जीवन ऐसे ही पनपता रहा। हम जिन स्थितियों में पैदा हुए हैं और पले हैं, उन्हीं को

प्राकृतिक और सामान्य स्थितियां समझ बैठे हैं। हम यह भूल गए हैं कि ये परिस्थितियां सदा भिन्न थीं और सदा बदलती रहेंगी। हम अपनी आदतों से इतने विवश हो गये हैं कि हमें ऐसा लगता है कि हम इनके बिना जीवित ही नहीं रह सकते। इन दोषों को त्याग करने की बात सोचने पर हमें यह जीवन भयानक, नीरस और आकर्षणहीन लगता है।

सभी दुष्प्रवृत्तियां अनिवार्य सी प्रतीत होती हैं। उन पर निरन्तर चलते रहने पर उनकी आवश्यकता प्रत्यक्ष रूप से बढ़ती ही रहती है। नमक, मिर्च या अन्य किसी उत्तेजक पदार्थ सेवन करने वाले व्यक्ति को इनसे रहित आहार भाता ही नहीं। ऐसा क्यों? केवल इसीलिए कि उसका दूषित स्वाद आहार की भीनी सुगन्ध को अनुभव करने के अयोग्य हो चुका है। उसे सर्वदा ऐसा भोजन चाहिए जिससे स्वाद ग्रन्थियों में उत्तेजना हो सके। तभी उसे आहार का "आनन्द" आता है।

चटपटे पदार्थों का सेवन करने वाला व्यक्ति सदा पहले से अधिक उत्तेजक खाद्य पदार्थों की (और वह भी अधिक मात्रा में) लालसा करता रहता है। वह उन्हें बार बार खाना चाहता है। तभी उसे भोजन का "आनन्द" आता है।

दीर्घ काल गुजरने के कारण मानव इस सीमा तक विकृत हो चुका है कि विकृति को ही अपनी प्राकृतिक स्थिति समझने लगा है। दूषित आदतें ही उसकी "सामान्य" आदतें बन गयी हैं।

स्वास्थ्य का आदर करने वाले व्यक्ति को अपनी दूषित आदतें त्याग कर अपने जीवन का एक भिन्न आधार पर निर्माण

करना चाहिये। स्थिति को पूर्ण रूप से समझ लेने के बाद ही वह ऐसे कर सकेगा। उसे अच्छी तरह समझ लेना होगा कि यही उसका सामान्य और वास्तविक जीवन है। उसका पूर्व रहन-सहन तो वास्तवीक जीवन का एक विकृत रूप ही था।

रोग प्रकट होने से पूर्व के रहन-सहन और आदतों को अपना सामान्य रहन-सहन माननेवाले और रोगावस्था में ही प्राकृतिक नियमों का पालन करनेवाले व्यक्ति प्राकृतिक चिकित्सा से अधिक लाभ नहीं उठा सकते क्योंकि उनकी प्रवृत्ति सदा पूर्व की दूषित आदतों की तरफ ही रहती है और वह सदा उसी की ओर लौटने को उत्सुक रहते हैं। इनके आस-पास के व्यक्ति भी प्रायः दूषित जीवन ही व्यतीत करते हैं और इसे ही अपना सामान्य जीवन मानते हैं।

सामान्य जीवन व्यतीत न करने वाले व्यक्ति कदापि प्रसन्न-चित्त नहीं रह सकते। उनके जीवन में प्रसन्नता का अभाव खटकता रहता है। अतः प्राकृतिक जीवन व्यतीत करते हुए यह समझ लेना परमावश्यक है कि यही उसका सामान्य जीवन है। अधिक मात्रा में बार-बार उत्तेजक पदार्थों का सेवन करने वाले तथा प्राकृतिक जीवन के अन्य नियमों को पालन न करने वाले व्यक्ति कदापि सामान्य जीवन व्यतीत नहीं कर सकते।

अध्याय-८

स्वास्थ्य की कुंजी

शरीर किसी अंग विशेष का नाम नहीं है बल्कि सभी अंगों के संयोग द्वारा इसका निर्माण हुआ है। शरीर की क्रियाशीलता में सभी अंग अपना योग प्रदान करते हैं। एक अंग की क्रिया का दूसरे सभी अंगों की क्रिया से कुछ न कुछ सम्बन्ध है। एक अंग की क्रिया में दोष उत्पन्न होने पर दूसरे सभी अगों की क्रिया में भी कुछ न कुछ असाधारणता अवश्य आ जाती है। शरीर के उपयुक्त संगठन पर ही स्वास्थ्य निर्भर है। आदर्श शरीर निर्माण की स्थिति में ही शरीर के सभी अग अपना कार्य ठीक ढंग से करते हैं। उत्तम शरीर संगठन की अवस्था में ही स्वास्थ्य के नियमों का पालन करने से वांछित परिणाम निकल सकता है।

स्वस्थ शरीर निर्माण ही स्वास्थ्य की कुंजी है। जन्म काल से ही इसकी नींव पड़ती है। वास्तव में तो जन्म से पूर्व की सावधानी ही शिशु के शारीरिक स्वास्थ्य की आधारशिला है। इसके पश्चात् उचित रहन-सहन के द्वारा ही शरीर स्वस्थ रहता है। रहन-सहन के दोषपूर्ण होने की स्थिति में काया भी अस्वस्थ हो जाती है।

उचित वातावरण की स्थिति में ही शरीर की साधारण क्रिया सम्भव है। किसी उपयुक्त परिस्थिति का अभाव होने पर अन्य परिस्थितियों का प्रभाव घट जाता है। यदि कोई व्यक्ति रहन-सहन के एक नियम का पालन करके अन्य नियमों की

अवहेलना करता है—जैसे केवल व्यायाम या आहार की ओर ही ध्यान देना—तो वह बड़ी भूल करता है। मानव को स्वस्थ रहने के लिए स्वास्थ्य के सभी मूल नियमों का पालन करना चाहिये। दवाइयाँ इनका स्थान नहीं ले सकतीं। दवाइयों की सहायता से स्वस्थ रहने का प्रयास सदा विफल रहा है और रहेगा।

हम जीवन की भिन्न भिन्न मूल आवश्यकताओं के विषय में विस्तारपूर्वक पहले बता चुके हैं। इन्हीं के उपयुक्त और सन्तुलित मात्रा में उपलब्धि के ऊपर ही शरीर की क्रियाशीलता निर्भर है। इन मूल आवश्यकताओं में से किसी एक या एक से अधिक के दीर्घकाल तक न मिलने पर शरीर की कार्यक्षमता या स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। शरीर की जितनी अधिक आवश्यकताएं जितने अधिक समय तक असंतुलित या अनुपयुक्त रहेंगी स्वास्थ्य भी उतना ही बिगड़ता चला जाएगा।

आहार का ही उदाहरण लीजिए, जो शरीर के लिए एक मूल आवश्यकता है और कई आवश्यक तत्व उससे मिलते हैं। इन्हीं तत्वों के द्वारा शरीर में नये कोशाणुओं और ऊतकों का निर्माण होता है। यही नये कोशाणु नष्ट हुए कोशाणुओं और ऊतकों का स्थान लेते हैं।

संतुलित आहार

अधिक मात्रा में भोजन सेवन करने से शरीर के ये तत्व एक बड़ी मात्रा में मिल जाते हैं। परन्तु ऐसा होने पर देह की भिन्न-भिन्न आवश्यकताओं का सन्तुलन बिगड़ जाता है। इससे स्वास्थ्य की हानि होती है। इसी प्रकार विटामिनों और

खाद्य लवणों से रहित भोजन का सेवन करनेवाला व्यक्ति अपने शरीर को इन महत्वपूर्ण तत्वों से वञ्चित रखता है।

बहुत कम मात्रा में भोजन करने वाला अर्थात् भूखों मरने वाला व्यक्ति भी इन आवश्यकताओं से हाथ धो बैठता है। इस प्रकार बहुत अधिक और बहुत कम मात्रा में भोजन करने वाले दोनों ही व्यक्ति रोगी रहते हैं।

जिस प्रकार आवश्यकता से कम सोनेवाला व्यक्ति अपने शरीर में आवश्यकताओं का असन्तुलन पैदा करता है वैसे ही बहुत सोनेवाला व्यक्ति भी अपनी काया को उसकी एक मुख्य आवश्यकता अर्थात् क्रियाशीलता से वञ्चित रखता है। फलस्वरूप वह भी अपने स्वास्थ्य का नाश करता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में इस तथ्य को बहुत सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया गया है—

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥

योग न तो पेटु व्यक्ति के लिए है, न ही भूखे व्यक्ति के लिए। वह ऐसे व्यक्ति के लिए भी नहीं जो सदा ही सोता रहता है या सदा जागता रहता है।

जहां तक हृदय गत आवश्यकताओं अर्थात् विश्वास, हर्ष, शील इत्यादि का सम्बन्ध है यह मानव को बहुत अधिक मात्रा में उपलब्ध नहीं हो सकती परन्तु इनका अभाव अवश्य हो सकता है।

जहां तक आहार, जल, वायु, सूर्य की रोशनी, व्यायाम, क्रियाशीलता, निद्रा जैसी भौतिक आवश्यकताओं का सम्बन्ध है, शरीर को इनका बहुत अधिक या बहुत कम मात्रा में उपलब्ध होना सम्भव है। इन दोनों स्थितियों में शक्ति का ह्रास होकर दुर्बलता आती है।

नियमित रूप से मूल आवश्यकताओं का अधिक मात्रा में उपलब्ध होने या उनका अभाव होने पर सर्वप्रथम शरीर की कार्यक्षमता बिगड़ती है। फिर शरीर की निर्माणात्मक क्षमता भी नष्ट हो जाती है।

आवश्यकताओं में असन्तुलन आ जाने पर प्राणशक्ति का अनावश्यक, अवांछित और व्यर्थ व्यय होने लगता है और साधारण-सा काम करने में भी अधिक शक्ति व्यय होती है। इस प्रकार जीवित रहना तक दूभर हो जाता है।

दुर्बलता के और भी बहुत-से कारण हो सकते हैं। दवाइयों, उत्तेजक और शामक पदार्थों आदि के सेवन से भी शरीर में दुर्बलता आ जाती है। वे सभी इसकी मूल आवश्यकता न होकर विषमात्र हैं। शरीर में इनके प्रवेश होने पर इनके दोषों से बचने के लिए अथवा यथासम्भव इन्हें शरीर से बाहर निकाल फेंकने में बहुत-सी प्राणशक्ति व्यय होती है।

मानसिक अवस्था और स्वास्थ्य

स्वस्थ रहने और स्वास्थ्य सुधार के लिये मानसिक अवस्था का भी बड़ा महत्व है। व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य जितना खराब होगा उसमें मानसिक असन्तुलन भी उतना ही अधिक होगा। क्रोध, भय, चिन्ता, ईर्ष्या, निराशा इत्यादि का कारण

मानसिक असन्तुलन ही है। ऐसी मानसिक स्थिति अपना लेने पर भी प्राणशक्ति का लगातार व्यर्थ व्यय होता रहता है।

उपरोक्त बातों से स्पष्ट है कि शक्ति ह्रास के चार मुख्य कारण है—

१) जीवन की कुछ मूल आवश्यकताओं का बाहुल्य।

२) कुछ मूल आवश्यकताओं का अभाव।

३) दवाइयों, उत्तेजक और शामक विषैले द्रव्यों का सेवन।

४) प्रतिकूल मानसिक स्थिति।

इनमें से किन्हीं एक या अधिक की उपस्थिति में शरीर के भीतर प्राणशक्ति का उचित वितरण नहीं होता। जितने लम्बे समय तक यह दोषपूर्ण आचरण चलता रहता है, मानव उतना ही दुर्बल होता चला जाता है और शरीर में प्राणशक्ति का वितरण भी उतने ही ग़लत ढंग से होता है।

मलिनावस्था ही रोग

प्राणशक्ति का उचित वितरण न होने पर सर्वप्रथम मल निवारक अंगों की क्रियाशीलता बिगड़ती है क्योंकि इन्हें प्राणशक्ति की आवश्यक मात्रा नहीं मिलती। फलस्वरूप कब्ज रहने लगती है। पसीने के द्वारा भी त्वचा से मल नहीं निकलता। फेफड़े भी अपने कार्य में ढीले पड़ जाते हैं। गुर्दे भी शरीर के मल को अच्छी तरह नहीं निकालते।

मल निवारण क्रिया ठीक न होने पर शरीर के भीतर की स्वच्छता भी घटने लगती है। शरीर के मलपूर्ण अवस्था ही सभी रोगों का मूल कारण है। श्री लूई कूने ने ऊतकों की मलिनावस्था को ही "रोग" माना है।

दुर्बलता का मुख्य कारण

संक्षेप में शरीर के सभी रोगों की पृष्ठभूमि में मलिनता प्रधान होती है। मलिनता का कारण है शक्तिहीनता। और दुर्बलता का मुख्य कारण है प्रकृति के नियमों का उल्लंघन।

अतः रोग से मुक्ति पाने के लिए उन आदतों का परित्याग परमावश्यक है जिनके द्वारा प्राणशक्ति का व्यर्थ नाश होता है। उन्हें तिलाञ्जली देकर उनके स्थान पर स्वास्थ्य-प्रद आदतों को अपनाना होगा। स्वास्थ्य स्तर में सुधार करने के लिए स्वास्थ्यप्रद रहन-सहन को अपनाना होगा।

जैसा पहले बताया जा चुका है दोषपूर्ण तथा गन्दे रहन-सहन से शक्ति क्षीण होती है। कमज़ोरी से शरीर में मल इकट्ठा होने लगता है और मल ही सभी रोगों का मूल कारण है।

डाक्टर लोग लक्षणों के अनुसार इन्हें भिन्न-भिन्न नाम देते हैं। रोग का चाहे कुछ भी नाम हो किन्तु मल या विजातीय द्रव्य ही इसका एकमात्र मूल कारण है।

अध्याय–९

नामकरण ही रोग का निदान नहीं

केवल नाम दे देने से रोग का निदान नहीं हो जाता। वास्तविक रोगमुक्ति का यह अर्थ है कि रोगी अपनी पीड़ा के कारण को भली भांति समझ ले। दोष-पूर्ण और गन्दा रहन-सहन ही रोग की जड़ है। रोग तो इसका फल मात्र है। जब तक कारण की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाएगा तब तक "प्रभाव" भी अनिवार्य रूप से बना रहेगा। विषैली दवाइयों द्वारा रोग के लक्षणों को दवा देने से ही रोग दूर नहीं हो जाता। लक्षण तो जीवन शक्ति क्षीण होने और शरीर में मल की वृद्धि होने पर भी बदल जाते हैं। क्या आप इसे रोग निवारण कहेंगे?

निस्सन्देह विषैली दवाइयों के सेवन से रोग के एक विशेष प्रकार के लक्षण दब जाने पर कुछ "आराम" मालूम देता है। लोग इसे ही रोगमुक्ति समझ बैठते हैं। अन्दर जमे हुए मल को बाहर निकाल फेंकने के प्रयत्न में शरीर को कुछ समय लगता है। तब तक रोगी स्वयं को "स्वस्थ" समझता रहता है क्योंकि इस अवधि में रोग के लक्षण प्रत्यक्ष नहीं होते। पुनः रोग के लक्षण प्रकट होने पर रोगी से कहा जाता है तो "तुम्हारा पहला रोग तो ठीक हो गया था। यह बीमारी अन्य कीटाणुओं के आक्रमण से हुई है।"

परन्तु वास्तविक तथ्य यह है कि अब उत्पन्न होने वाला प्रत्येक नया लक्षण या दोष पूर्व के लक्षण या दोष के कारण से पूर्ण रूप से सम्बन्धित है जिसे दवाई द्वारा दबा दिया गया था।

विजातीय द्रव्य ही एक ऐसी डोरी है जो समय समय पर उत्पन्न होनेवाले लक्षणों में से (जो एक माला के मनकों के समान हैं) होता हुआ गुजरता है। डोरी काट देने पर सब मनके बिखर जाते हैं।

रोग एक, नाम अनेक

गन्दे रहन-सहन को अपनाए रहने तथा विषैली दवाओं को प्रयोग करते रहने पर शरीर का मल बढ़ता है। मल जितना "शक्तिशाली" होगा, लक्षण भी उतने ही भिन्न प्रकार के होंगे।

इससे स्पष्ट है कि मल ही रोग का एकमात्र कारण है। कारण को दूर करने पर रोग के लक्षण—चाहे वे कितने ही भयानक क्यों न हों—स्वयं ही लुप्त हो जायेंगे। "एको व्याधिः वैद्याः बहुधा वदन्ति", रोग तो एक ही है, परन्तु चिकित्सकों ने इसे भिन्न-भिन्न नाम दे डालते हैं।

अपनी असली प्रारम्भिक अवस्था में रोग प्राणशक्ति का एक प्रयत्न मात्र है—मल को शरीर से बाहर निकालने का। नज़ला, जुकाम, ज्वर, दस्त, फोड़े-फुंसी, खांसी, चेचक, मोती झरा इत्यादि इसी वर्ग के रोग हैं। इन सभी रोगों में प्राणशक्ति शरीर के अन्दर जमा मल को बाहर निकालने में व्यस्त रहती है।

सभी तीव्र रोगों का क्षेत्र सीमित होता है। ज्यों ही शरीर कुछ स्वच्छ हो जाता है, शरीर की मल-निवारण क्रिया बन्द हो जाती है और रोग के कष्ट-दायक लक्षण शान्त हो जाते हैं।

प्राणशक्ति का ऐसे रोगों को उत्पन्न करने का अभिप्राय अति कल्याणकारी है। इनके द्वारा रोग की जड़ नष्ट हो जाती है स्वास्थ्य-स्तर की उन्नति होती है तथा आन्तरिक स्वच्छता बढ़ती है। अतः हमें ऐसे रोगों का स्वागत करना चाहिए न कि इनसे भयभीत हों। ऐसे रोग स्वास्थ्य की दिशा में एक शक्तिशाली प्रयत्नमात्र है। ऐसे प्रयत्नों को कुचलने की कुचेष्टा करने पर हम स्वास्थ्य पथ की ओर अग्रसर नहीं होते, बल्कि भयङ्कर रोगों को ही शरण देते हैं। इसीलिए प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति में विषैली दवाइयों और लक्षणों को दबाने के साधनों का कोई स्थान नहीं।

स्वास्थ्य-स्तर में सुधार करने के लिए ही तीव्र रोग की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार रोग और स्वास्थ्य का बड़ा गहरा सम्बन्ध है। जैसा अधिकतर लोग प्रायः समझते हैं, रोग हमारे स्वास्थ्य-स्तर को नष्ट करने के लिए नहीं होती। वास्तव में बात इसके बिलकुल विपरीत है। प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति ने इसे *"स्वास्थ्य और रोग का ऐक्कि सिद्धन्त" का नाम दिया है।

रोग का सही, समुचित उपचार

वस्तुतः निम्न-स्वास्थ्य-स्तर ही रोग है। स्वास्थ्य-स्तर में उन्नति करने पर ही रोग पूर्णरूपेण ठीक हो सकता है। स्वास्थ्य-प्राप्ति और स्वास्थ्य-स्तर में सुधार करने के लिए शरीर को उसकी मूल आवश्यकताओं की ज़रूरत है न कि विषैले तत्वों (दवाईयों) की। रोग होने पर स्वास्थ्य-वर्धक तत्वों से विहीन

---

* Unity of health and disease.

या स्वास्थ्य की अवस्था में स्वास्थ्य को क्षीण करनेवाली वस्तुओं को स्वास्थ्य-प्रद मानकर सेवन करना कोरी मूर्खता है। उत्तेजक और शामक दवाइयों या ऐसी ही अन्य वस्तुओं का शरीर के लिए कोई लाभप्रद महत्व नहीं। ऐसी वस्तुओं का सेवन करने से स्वस्थ व्यक्ति भी दुर्बल हो जाता है और स्वयं को अस्वस्थ अनुभव करने लगता है। उसका स्वास्थ्य-स्तर गिर जाता है। बात बड़ी विचित्र प्रतीत होती है कि रोग की अवस्था में इनकी कोई स्वास्थ्य-प्रद क्रिया सम्भव नहीं है।

मैं अपने पिछले पैंतीस वर्षों के अनुभव के आधार पर यह बात दृढ़तापूर्वक और निःसङ्कोच कह सकता हूँ कि रोग में केवल ऐसी वस्तुएं ही औषधरूप सिद्ध हो सकती हैं जिनमें खाद्य वस्तुओं के पांचों तत्व विद्यमान हों, जिनका स्वास्थ्य की अवस्था में ही स्वास्थ्य-प्रद प्रभाव हो और जिनके द्वारा एक स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य-स्तर का सुधार हो सके। यही *"आहार और औषधि का ऐक्य नियम" है।

---

* Unity of food and medicine.

अध्याय–१०

दवा उपचार किया रोग बढ़ता गया

रोग की परोक्ष स्थिति

जब प्राणशक्ति शरीर के अन्दर जमा मल को असाधारण ढंग से बाहर निकालना आरम्भ करता है तो इसे तीव्र रोग की संज्ञा दी जाती है और रोगी को पीड़ायुक्त लक्षणों का अनुभव होने लगता है।

विजातीय द्रव्य पर प्राणशक्ति की क्रिया होने और उसके शरीर के अन्दर ही जमा रहने तक कष्ट की स्थिति बनी रहती है। रोगी शरीर में बेचैनी अनुभव करता है यद्यपि इसके लक्षण बाहर दिखाई नहीं देते। उसे अपना शरीर आलस्यपूर्ण और भारी भारी लगता है। यह रोग की परोक्ष (अप्रत्यक्ष) स्थिति है।

तीव्र रोग

प्राणशक्ति की विजातीय द्रव्य पर क्रिया होने और इसके शीघ्रतापूर्वक बाहर निकलने पर, छुपी हुई बीमारी प्रत्यक्ष रूप धारण कर लेती है अर्थात् रोग के लक्षण बाहर प्रकट हो जाते हैं। इस अवस्था में बहुत कमज़ोरी अनुभव होती है। इसका एकमात्र कारण यही है कि शरीर की उपलब्ध प्राणशक्ति मल-निवारण क्रिया में जुट जाती है। इस अवस्था में भूख लुप्त हो जाती है।

रोगी न तो चल फिर सकता है, न ही पढ़ सकता है और न ही उसके लिए और कोई काम सम्भव है।

रोग की अवस्था में दिखाई देने वाले लक्षण इस बात को दर्शाते हैं कि शरीर की आन्तरिक दशा सामान्य नहीं है और रोगी को अपने शरीर से साधारण कार्य की भी आशा नहीं करनी चाहिए। न तो ये लक्षण ही रोग हैं और न ही इनसे मुक्ति मिलने को रोगमुक्ति समझना चाहिए।

लक्षणों को न दबाने, प्राकृतिक साधनों का पालन करने और प्राणशक्ति की मल निवारक क्रिया को न रोकने पर रोगी शीघ्र ही अपने स्वास्थ्य में सुधार अनुभव करने लगता है। इसके विपरीत यदि लक्षणों को विषैली दवाइयों या अन्य लक्षण-नाशक चिकित्सा द्वारा दबाया जाये तो स्वास्थ्य-स्तर स्थायी रूप से और काफ़ी मात्रा में गिर जाता है।

मन्द रोग

सम्भवतः दवाइयाँ प्रकट-प्रत्यक्ष रोग को अप्रत्यक्ष कर सकती हैं। परन्तु रोग का मूल ज्यों का त्यों बना रहता है और इसके शरीर के बाहर न निकलने से शरीर में मल की मात्रा बढ़ती ही रहती है। फलस्वरूप रोग के तीव्र लक्षण बार-बार प्रकट होते रहते हैं।

इस प्रकार रोग के तीव्र लक्षणों को विषैली दवाइयों या ऐसी ही अन्य हिंसक दवाइयों के द्वारा बार-बार दबाने से मन्द रोगों की उत्पत्ति होती है। तीव्र रोगों में रोग के लक्षण सीमित काल के लिए प्रत्यक्ष होते हैं परन्तु मन्द रोगों के लक्षणों का अनुभव रोगी पर हर समय रहता है। मन्द रोग की तीव्र

अवस्था में इन लक्षणों का अनुभव अधिक होता है। ज्यों ज्यों इसकी तीक्ष्णता घटती है, लक्षण भी कम होने लगते हैं। परन्तु मन्द रोग से पीड़ित व्यक्ति भली भांति जानता है और उसे अन्दर से अनुभव भी होता रहता है कि वह रोगग्रस्त है।

मारक रोग

मन्द रोग की बार बार विषैली दवाइयों से चिकित्सा करने पर शरीर की कार्यक्षमता और निर्माणात्मक दृष्टि से दुर्बल होता चला जाता है। दवाइयों का निरन्तर सेवन करते रहने और दोषपूर्ण रहन-सहन को अपनाए रखने से प्राणशक्ति इतनी घट जाती है कि रोग मारक रोग का रूप धारण कर लेता है। ऐसी स्थिति में रोगी स्वयं को सदा बहुत कमज़ोर अनुभव करता है। शरीर में प्राणशक्ति के क्षीण हो जाने के कारण विजातीय द्रव्य का शरीर के बाहर निकलना सम्भव नहीं होता। रोगी सदा अपने शरीर के भीतर भारीपन और पीड़ा अनुभव करता रहता है। उसे निद्रा भी नहीं आती। उसे ऐसे ही अन्य लक्षण भी अनुभव होते रहते हैं। मारक रोग की अवस्था में दवाइयों से भी कुछ आराम मालूम नहीं होता।

विषैली दवाइयों का सेवन करने से साधारण तीव्र रोग भी मन्द रोगों का रूप धारण कर लेते हैं। फिर यह मन्द रोग मारक रोग बन जाते हैं।

दवाएं वरदान नहीं

दवाइयाँ मानव के लिए वरदान नहीं हैं। स्वास्थ्य-लाभ तथा स्वास्थ्य-सुधार के लिए सर्वप्रथम यह परमावश्यक है कि दवाइयों का पूर्णरूप से त्याग किया जाए।

प्राकृतिक चिकित्सा का अहिंसक ढंग से पालन से रोग घटता है। अर्थात् जब मारक रोग से पीड़ित रोगी प्राकृतिक पद्धति द्वारा अपनी चिकित्सा करता है तो मारक रोग के लक्षण लुप्त हो जाते हैं और मन्द रोग के लक्षण प्रत्यक्ष होने लगने हैं। प्राकृतिक साधनों का पालन करते रहने से मन्द रोग भी शीघ्र लुप्त हो जाता है और तीव्र रोग के लक्षण उन्हीं बीमारियों के हैं जिनसे रोगी पहले पीड़ित हुआ था और ये अपने विपरीत क्रम में प्रकट होते हैं। फिर उपवास तथा अन्य प्राकृतिक साधनों का पालन करने से ये तीव्र लक्षण भी लुप्त हो जाते हैं और स्वास्थ्य-सुधार होने लगता है। इस सिद्धान्त को रोग की "विपरीतगामी गति" कहते हैं।

रोग—निवारक संकट

प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा स्वास्थ्य-लाभ करने पर प्राण-शक्ति तीव्र रोग-निवारक संकटों (acute healing crises) की उत्पत्ति करके शरीर के विजातीय द्रव्य को बाहर निकाल देती हैं। ऐसे रोग निवारक संकटों का स्वागत करना चाहिये। ऐसे प्रत्येक संकट के पश्चात् रोगी अपने शरीर में स्वास्थ्य-सुधार का अनुभव करता है।

कुछ तथाकथित चिकित्सा प्रणालियों का मत है कि प्रकृति की रोग-निवारक शक्ति अति क्षीण है। इस विषय में यहाँ यह बता देना पर्याप्त होगा कि शरीर को स्वस्थ बनाने के लिए प्रकृति को किसी भी दवाई की सहायता की आवश्यकता नहीं।

स्वास्थ्य-सुधार और स्वास्थ्य-लाभ के लिए शक्ति-मित-व्ययता के नियम का पालन करने की प्रथम आवश्यकता है। स्वास्थ्याभिलाषी को शक्ति व्यय में बचत करने की बड़ी जरूरत

है। बचाई हुई शक्ति द्वारा ही शरीर के संचित मलों का निष्कासन रक्त और कोशाणुओं का शोधन तथा नये और स्वस्थ ऊतकों का निर्माण हो सकता है।

अन्य चिकित्सा पद्धतियों से गठ-जोड नहीं

प्राकृतिक चिकित्सा का अल्प ज्ञान रखने वाले व्यक्ति प्रायः इस पद्धति के एलोपैथी, आयुर्वेद, यूनानी जैसी अन्य चिकित्सा प्रणालियों से सहयोग की बात किया करते हैं। वे यह नहीं जानते कि प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली राजनीति के समान नहीं जिसमें विरोधी दल अपने एक समान सिद्धान्त न होने पर भी सुविधा के लिए गठ जोड़ कर लेते हैं। अन्य चिकित्सा प्रणालियों का "स्वास्थ्य" से लेशमात्र भी सम्बन्ध नहीं। इसके विपरीत प्राकृतिक चिकित्सा एक जीवन-दर्शन तथा रहन-सहन की विधि मात्र है। इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति का ऐसी चिकित्सा पद्धतियों से कोई गठ-जोड़ होना सम्भव नहीं।

बीमार पड़ने पर दवाइयों के विषय में सोचना निरर्थक है चाहे ये दवाइयां रासायनिक द्रव्य हों या विदेशों से मंगायी गयी हों या स्वदेशी पौधों अथवा धातुओं से बनाइ गई हों।

स्वास्थ्य—एक ही साधन

शान्ति एक ही साधन है; शान्ति का कोई दूसरा रास्ता नहीं। लड़ाई के क्षेत्र को विस्तृत करने से शान्ति सम्भव नहीं। जब तक शान्ति के सभी साधन न जुटाये जाएं स्थायी शान्ति नहीं हो सकती।

इसी प्रकार स्वास्थ्य एक ही साधन है। इसका दूसरा कोई रास्ता नहीं। स्वास्थ्य की अभिलाषा करने पर स्वास्थ्य-सम्बन्धी सभी बातें अर्थात् रहन-सहन की सभी आदतें, चाहे वे शारीरिक हों या मानसिक, स्वास्थ्य-प्रद होनी चाहिए। अन्यथा स्वास्थ्य-सुधार सम्भव नहीं। यदि कोई व्यक्ति उत्तेजक और शामक तत्वों और दवाइयों का सेवन करके या बिना भूख के आहार करके या अधिक मात्रा में आहार सेवन करके स्वास्थ्य-प्राप्ति चाहे तो वह निश्चय ही असफल रहेगा।

दवा उद्योग की उन्नति को विज्ञान और सभ्यता की उन्नति मानना बिलकुल गलत है। इसी प्रकार प्राकृतिक रहन-सहन की असभ्यता से समानता करना भी ठीक नहीं है।

अध्याय–११

दीर्घायु का रहस्य

स्वस्थ रहन-सहन के महान अनुयायी श्री जौन बी. लस्ट का कथन है :

"क्या कारण है कि हमें जो एक शताब्दी में इतना आगे बढ़ गये हैं दीर्घायु के रहस्य को समझने के लिए तथाकथित पिछड़े हुए लोगों की ओर देखना पड़ता है ?

"दवाइयों, भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, आहार-सम्बन्धि सिद्धान्तों के बावजूत भी आज युवावस्था में ही मृत्यु क्यों हो जाती है ? जब कि अर्ध भूमि पर फैले प्राचीन ग्रामों में लोग हमारे से दुगुनी आयु तक जीवित रहते हैं ? वे भी हमारे समान ही दीख पड़ते हैं। उनके भी हमारे जैसे शरीर और ऊतक हैं। यदि सभी व्यक्ति जन्म के समय एक जैसे पैदा होते हैं तो क्या कारण है कि ये लोग सौ-सौ वर्ष तक जीवित रह सकते हैं ? इस विषय में एक बात महत्वपूर्ण है कि वे प्रकृति चक्र से अलग नहीं होते। वे सूर्य के साथ जागते हैं। क्या आप भी ऐसा करते हैं ? वे मुख्यतः प्राकृतिक खाद में (जिस में अप्राकृतिक तत्वों का मिश्रण नहीं किया जाता) उगी साग-सब्जियों और फलों का आहार सेवन करके ही जीवन निर्वाह करते हैं। क्या आप भी ऐसा करते हैं ? वे मटमैले पूर्ण अनाज से अपना रोटी बनाते हैं। जब कभी उन्हे शर्करा खानी होती है वे इसे प्राकृतिक अवस्था में ही सेवन करते हैं। मिठास के लिए हम जिस सफ़ेद चीनी का का प्रयोग करते हैं, वे इसका सेवन नहीं करते। वे प्रकृति

की खुली नदियों में स्नान करते हैं। वे दवाइयों की सहायता के बिना ही सो जाते हैं और जूतों के बिना नंगे पांव ही घूमते फिरते हैं। इनमें से आप कितनी बातों का पालन करते हैं या कर सकते हैं?"

दो बातों का पालन भी नहीं

श्री लस्ट आगे कहते हैं—"यदि आप यह कह सकते हैं कि उपरोक्त बातों में से केवल दो का ही आप नियमित रूप से पालन करते हैं तो आप आधुनिक समाज के अधिकतर व्यक्तियों से अधिक सौभाग्यशाली हैं। अधिकतर व्यक्ति इनमें से किसी भी बात का पालन नहीं करते। बहुत से व्यक्ति इन बातों का पालन इसीलिए नहीं करते क्योंकि वे इन बातों को निरर्थक मानते हैं और इनके तात्पर्य और महत्व को ही नहीं मानते। अन्य व्यक्ति इन पर इसलिए नहीं चलते क्योंकि यह उन्हें आधुनिक समाज में कष्टप्रद और असाध्य अनुभव होती हैं। आपने देखा कि हमनें जीवन को कैसे तोड़ मरोड़ लिया है। हम इस स्थिति में पहुँच चुके है जहां प्राकृतिक बात अप्राकृतिक प्रतीत होती हैं और प्रकृति से पिछड़ा हुआ जीवन ही जीवन का ठीक ढंग प्रतीत होता है। फिर क्या आश्चर्य कि हमारा युग हृदय रोगों, कैंसर, कब्ज़, मन्द पाचन-क्रिया, अल्सर, स्थायी थकान, नज़ला, सिर-दर्द का युग बना हुआ है? प्रकृति के सिद्धान्तों का उल्लंघन करने पर प्रकृति द्वारा हमारी अवहेलना के प्रति हमें आंखें मूंद लेने की आशा नहीं करनी चाहिए। हम भले ही ऐसी आशा रखें, परन्तु प्रकृति ऐसा नहीं कर सकती। हमारा चुनाव स्पष्ट है। हम किस रास्ते को चुनेंगे—स्वास्थ्य पथ को या रोग पथ को? प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान स्वास्थ्य-पथ की

ही पुष्टि करता है । उल्लंघन का रास्ता, जहां विषों का खूब खुला प्रयोग होता है, रोग पथ है ।

"स्वास्थ्य और रोग न तो आकस्मिक घटनाएं हैं और न ही भाग्य पर निर्भर हैं । स्वास्थ्य और रोगों की उत्पत्ति नियमों के अनुसार ही होती है । रहन-सहन में स्वास्थ्य-पथ को अपनाने से हमें स्वास्थ्य ही मिलेगा, रोग नहीं । इसी प्रकार प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करने पर हमें रोग ही मिलेगा, स्वास्थ्य नहीं । ग़लत रहन-सहन को अपनाने पर और विषैली दवाइयों से स्वस्थ होने की आशा करने वाले व्यक्ति अपनी निराली दुनिया में ही बसते हैं ।"

स्वाभाविक प्रवृत्तियों का सहज ज्ञान

प्राणशक्ति की स्वाभाविक अन्तर्जात प्रवृत्तियों को यह पूरा ज्ञान है कि उनके लिए क्या अच्छा है और क्या बुरा । वे भली-भांति जानती हैं कि कौन से पदार्थों को पचाकर उन्हें शरीर के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है । उन्हें यह भी पता है कि कौन सी वस्तुओं के प्रभाव को नष्ट करना चाहिए, किनके विरुद्ध प्राण-शक्ति की प्रतिक्रिया होनी चाहिए और शरीर के बाहर निकाल देना चाहिए ।

जब कोई व्यक्ति सन्तरा या सेव या कोई अन्य ऐसा खाद्य पदार्थ सेवन करता है जिससे शरीर के लिए आवश्यक तत्व प्राप्त हो सकते हैं तो प्राणशक्ति की प्रवृत्तियां ऐसी वस्तु के प्रवेश का स्वागत करती हैं और भिन्न-भिन्न पाचक रसों द्वारा उन पर अपनी प्रक्रिया करके उसे शरीर का अंग बना लेती हैं । जो

भाग शरीर के कुछ काम का नहीं उसे उपयोगी भाग से अलग कर लिया जाता है। केवल ऐसे भाग को ही शरीर से बाहर फेंक दिया जाता है। ऐसे व्यर्थ पदार्थ के शरीर से बाहर निकल जाने पर हम स्फूर्ति का अनुभव करते हैं।

निस्सन्देह ऐसे किसी खाद्य पदार्थ को सेवन करने पर शरीर के कुछ अंगों की सामान्य क्रिया बढ़ जाती है। किन्तु यह शरीर की सामान्य क्रिया का भाग है जो उसे साधारण रूप से करना होता है। यद्यपि इस क्रिया में भी कुछ प्राणशक्ति व्यय होती है फिर भी इससे कोई व्यक्ति थकावट या कमज़ोरी अनुभव नहीं करता। आहार पचाने में शक्ति व्यय के बदले शरीर को विटामिनों, खाद्य लवण-तत्वों, एमिनो अम्ल तत्वों इत्यादि की उपयुक्त मात्रा मिल जाती है।

खाओ बार बार—बने रहो बीमार

ठीक ढंग से दिन में दो बार आहार सेवन करने पर इसे पचाने में जो प्राणशक्ति खर्च होती है उससे शरीर को किसी प्रकार की हानि की सम्भावना नहीं। ऐसी अवस्था में शरीर स्वस्थ रहता और उसके अंग निर्माणात्मक और क्रियात्मक दृष्टि से ठीक प्रकार से काम करते रहते हैं। परन्तु लगातार अधिक मात्रा में या गलत ढंग से भोजन करते रहने से शरीर को लगभग सदा ही अधिक परिश्रम करते रहना पड़ता है। इससे अंगों का स्वास्थ्य क्षीण होता है। कुछ समय में ही वे दोष-पूर्ण ढंग से कार्य करने के आदि हो जाते हैं। उनमें रोग पूर्ण परिवर्तन उत्पन्न हो जाते हैं। इससे विषैले मल को शरीर से बाहर निकालने की क्षमता नष्ट हो जाती है। इस स्थिति में शरीर विषैली तत्वों के प्रवेश को भी सहन करने लगता है। परिणाम यह होना है कि साधारण स्वास्थ्य-स्तर गिर जाता है।

यही कारण है कि अधिक मात्रा में भोजन करनेवालों का पेट बढ़ जाता है । छोटी और बड़ी आन्तों का आकार किसी स्थान पर बढ़ जाता है या वह कहीं कहीं पर कड़ी हो जाती हैं । इसी प्रकार जिगर का आकार भी बढ़ या घट जाता है या वह सख्त हो जाता है ।

इसी प्रकार शरीर की क्षमता घटते रहने पर इसमें विघटनात्मक परिवर्तन होने लगते हैं ।

प्राणशक्ति की क्षीणता

प्राणशक्ति की यह क्षीणता केवल लगातार विषैले पदार्थों के सेवन करते रहने से या रहन-सहन की अन्य आदतों को अपनाने से ही पैदा नहीं हो जाती, बल्कि इसके और भी बहुत से कारण हो सकते हैं । नंगे पांव घूमने वाले व्यक्तियों के पांवों के तलुवों की त्वचा कड़ी हो जाती है । अन्यथा उस व्यक्ति के लिए ऊबड़ खाबड़ भूमि पर नंगे पांव चलना सम्भव न हो । इसी प्रकार टाइप करनेवाले व्यक्ति के हाथों की अंगुलियों का आगे का भाग भी कुछ कड़ा हो जाता है, अन्यथा वह घण्टों तक लगातार टाइप न कर सके । रासायनिक टूथ-पेस्ट या मंजन इस्तेमाल करने वालों के मुंह के मसूड़े तथा उनके मुंह के अन्दर की झिल्ली भी कड़ी हो जाती है अन्यथा वे रासायनिक पदार्थों से उत्पन्न हुई उत्तेजना को सहन न कर सके । आहार में लगातार मिर्च मसालों का सेवन करनेवाले व्यक्तियों के मुंह, गले, ग्रास-नली, मेदे इत्यादि की झिल्ली भी सख्त हो जाती है । अन्यथा यह झिल्ली मिर्च मसालों से उत्पन्न उत्तेजना को सहन न कर सके । हाथों से काम करने वाले श्रमिकों के हथेलियां भी सख्त हो जाती हैं जिससे वे भारी औजारों को उठाकर उनका प्रयोग कर सकें ।

ऐसे ही सिगरेट के धुएं और काफ़ी के स्वाद से घृणा करने वाले व्यक्ति इनका लगातार सेवन करते रहने पर थोड़े समय में ही इनके प्रति सहन शक्ति उत्पन्न कर लेते हैं।

प्राणशक्ति की ऐसी सहन-शक्ति सम्बद्ध अंगों की क्षमता का ह्रास होने पर ही सम्भव है। इस प्रकार सारे शरीर की ही कार्यक्षमता घटती है। इस तथ्य का कि मानव स्वयं को दूषित आदतों और आचरण के प्रति ढ़ाल सकता है यह अर्थ नहीं कि उनका उसके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। हर बार जब हम स्वयं को रहन-सहन की बुरी आदतों या प्रभावों के अभ्यस्त बनाते हैं तो अपनी प्राणशक्ति का नाश करते हैं तथा कमज़ोर बनते हैं।

हमारे शरीर के प्रत्येक कोश णु में विद्यमान आत्म-संरक्षण प्रवृत्ति पर बाहर से पहुँचाई गयी प्रत्येक उत्तेजना का प्रभाव पड़ता है। यह प्रभाव जन्म जात प्रवृत्ति के कारण है और तुरन्त उत्पन्न होता है। परन्तु कोशाणुओं की यह प्रवृत्ति शरीर की प्राणशक्ति के भण्डार पर निर्भर है। जैसे जैसे रहन-सहन की दूषित आदतों के अपनाने से यह प्राणशक्ति नष्ट होती रहती है, वैसे वैसे कोशाणुओं की इनसे प्रभावित होने की शक्ति भी घटती रहती है। ऐसी अवस्था में ही "प्राणशक्ति की सहनशक्ति" का प्रादुर्भाव होता है।

आरम्भ में आत्म-संरक्षण प्रवृत्ति काफ़ी शक्तिशाली होती है। धीरे धीरे वह घटती चली जाती है। जिस किसी प्रभाव को नष्ट करने में यह प्राणशक्ति असमर्थ होती है, उसके प्रति यह "सहन शक्ति" की भावना अपना लेती है। यही "सहन शक्ति" का नियम है।

सभी क्रियात्मक और निर्माणात्मक परिवर्तन चाहें वह साधारण हों या असाधारण इसी नियम के अनुसार होते हैं। यदि ऐसा न हो तो शरीर का तुरन्त ही अन्त हो जाए।

इस प्रकार मानव स्वास्थ्य की अवस्था से स्वास्थ्य के निम्नातिनिम्न स्तरों तक पहुंच कर रोगी हो जाता है।

रोग का मूल कारण—दोषपूर्ण रहन-सहन

विस्तृत दृष्टिकोण से दोषपूर्ण रहन-सहन ही सभी बीमारियों का मूल कारण है। जब तक रहन-सहन बिगड़ा रहेगा तब तक उससे उत्पन्न प्रभाव—निम्न स्वास्थ्य-स्तर—भी बना रहेगा। रहन-सहन के सभी दोषों को दूर किये बिना न तो किसी रोग से छुटकारा पाना संभव है और न ही स्वास्थ्य प्राप्त करना।

दवाइयों का सेवन करने से पीड़ा तथा रोग के अन्य लक्षणों से अस्थायी रूप में कुछ आराम मिल सकता है और रोगी स्वयं को रोगमुक्त समझने लगता है। दवाइयों की चिकित्सा-पद्धति में रोगी को अपने रहन-सहन में कुछ सुधार करने के लिए नहीं कहा जाता। दवा के प्रयोग के साथ साथ दोषपूर्ण रहन-सहन अर्थात् ग़लत आहार सेवन, अधिक मात्रा में भोजन करना, चाय, काफ़ी, तम्बाकू जैसे नशीले पदार्थों का उपयोग भी चलता रहता है। ऐसा होने पर शरीर की क्षमता क्षीण होती चली जाती है जिसके फलस्वरूप मन्द और मारक रोग उत्पन्न होते हैं।

उपरोक्त बातों से स्पष्ट है कि किस प्रकार एक स्वस्थ व्यक्ति धीरे धीरे स्वयं को रोग का अभ्यस्त बना लेता है।

अब हमें यह देखना हैं कि किस प्रकार कोई व्यक्ति रोग से स्वास्थ्य की ओर बढ़ सकता है। यदि ऐसा न हो तो स्वास्थ्य लाभ सम्भव हो न होगा।

प्राणयुक्त शरीर स्वयं को रोग और स्वास्थ्य दोनों दिशाओं में ले जा सकता है। मानव या तो रहन-सहन में सुधार करके कुछ समय में ही एक महान व्यक्ति बन जाता है या वह बुरी आदतों को अपनाकर मानव से दानव भी बन सकता है।

ग़लत रहन-सहन को अपनानेवाला मन्द रोग से पीड़ित व्यक्ति धीरे धीरे अहिंसात्मक ढंग से अपनी आदतों में सुधार करके स्वस्थ रहन-सहन को भी अपना सकता है। उपयुक्त पथ्याहार (अर्थात् साग-सब्जियों और फलों का उपयुक्त मात्रा में सेवन) सूर्य स्नान व्यायाम, उपवास इत्यादि कुछ ऐसे साधन हैं जिन्हें शरीर उन्नतरूप से अपना सकता है। जैसे ही शरीर इन्हें अपनाकर इनका अभ्यस्त बनेगा वैसे ही शरीर में जमा विषैले तत्व नष्ट होने शुरू हो जायेंगे। ज्यों ज्यों शरीर के स्वास्थ्य-स्तर में उन्नति होगी त्यों त्यों शरीर में पहले जमा विष इसके बाहर निकलने लगेगा। यह क्रिया साधारण मल-निष्कासन अङ्गों द्वारा भी हो सकती है और कभी कभी रोग-निवारक संकट अर्थात् ज्वर, नज़ला, दस्त, फोड़े फुंसी इत्यादि द्वारा भी। रोग-निवारक संकट शरीर के विषों को बाहर निकालने के लिए ही उपस्थित होते हैं। प्राण-शक्ति के प्रयत्न द्वारा ही रोग निवारक संकट की उत्पत्ति होती है। यह संकट शरीर से दूषित द्रव्य को बाहर निकाल फेंकने के प्रयत्न मात्र हैं ताकि आन्तरिक स्वच्छता में सुधार हो और स्वास्थ्य-स्तर ऊंचा उठे। प्रत्येक ऐसा संकट शरीर का एक बडा प्रयत्न है ताकि वह अधिक उत्तम और स्वस्थ अवस्था का स्वामी हो सके।

रोग-निवारक संकट से भय क्यों?

रोग-निवारक संकट किसी ऐसे ऋणी व्यक्ति की अवस्था के समान है जो अपने ऋण को चुकाने का बार बार घोर प्रयत्न करता है। जब भी वह अपना ऋण का कुछ भाग चुका देता है उसकी अवस्था में सुधार हो जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा दर्शन से अनभिज्ञ व्यक्ति रोग निवारक संकट से भयभीत हो जाते हैं। दवाओं की सहायता से रोग-निवारक संकट को दवाने का दुष्परिणाम यह होता है कि वह व्यक्ति कदापि अपने शरीर को स्वस्थ नहीं बना सकता।

मानव स्वयं को अपनी रहन-सहन की आदतों तथा रहन-सहन के वातावरण के अनुसार—चाहे वह ठीक हो या ग़लत, स्वास्थ्य-वर्धक हो या स्वास्थ्य-नाशक—ढ़ालता रहता है। साधारणतः वह इसकी ओर कुछ ध्यान नहीं देता। बीमार पड़ने पर भी वह रोग और उसके कारण अर्थात् स्वास्थ्य-नाशक रहन-सहन और वातावरण के बीच सम्बन्ध को जोड़ नहीं पाता।

आज के समाज में दोषपूर्ण रहन-सहन और दवाइयों का बड़ा प्रचलन है। इनके द्वारा ही वह अधिकाधिक रोग का अभ्तस्त बनता जाता है क्योंकि ये उसे इनका अभ्यस्त बनाने में सहायक सिद्ध होते हैं। इनसे मुक्त रहने की बड़ी आवश्यकता है। उसे रहन-सहन की सही आदतों के महत्व को समझने की बड़ी आवश्यकता है। ऐसा करने पर ही वह स्वयं को स्वास्थ्य-वर्धक आदतों का अभ्यस्त बना सकता है। यही रास्ता सभी के लिये श्रेयस्कर है।

प्रकृति माँ का आश्वासन

इस पुस्तक द्वारा हमने संक्षिप्त रूप से प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान के मूल सिद्धान्तों को पाठकों के सामने रखने का प्रयत्न किया है। हमें आशा है कि यह पुस्तक उन सभी व्यक्तियों की आंखें खोलने में सहायक सिद्ध होगी जो भ्रमवश यह समझते हैं कि स्वस्थ रहने के लिए अधिक से अधिक "चिकित्साओं" और दवा की "सुविधाओं" की ही आवश्यकता है।

सब प्रकार के अधर्म अर्थात विविध प्रकार के दोषपूर्ण रहन-सहन को त्यागकर प्रकृति की शरण लें। प्रकृति ही आपको सब रोगों से मुक्ति प्रदान करेगी। इसमें लेशमात्र में भी सन्देह नहीं—

दुराचारान् परित्यज्य प्रकृतिं शरणं व्रज।
प्रकृतिस्त्वां सर्वरोगेभ्यो मोक्षयिष्यति मा शुचः॥

Phone : 2659

Sarma's Sanatorium Press,
Ganeshnagar, Pudukkottai-622 001

दि लाइफ़ नैचुरल

[अंग्रेजी व हिन्दी में]

प्रति मास इस पत्रिका में प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी कई अति उपयेगी लेख प्रकाशित होते हैं।

हिन्दी विभाग में जो लेख प्रकाशित किये जाते हैं, वे अनुवाद नहीं, अतिरिक्त हैं।

वार्षिक शुल्क जनवरी से दिसम्बर तक का होता है। शुल्क की दरें इस प्रकार हैं —

	वार्षिक रु.	आजीवन रु.
दि लाईफ़ नेचुरल (अंग्रेजी)	20/-	250/-
,, ,, ,, (हिन्दी)	20/-	250/-
,, ,, ,, (अंग्रेजी–हिन्दी संयुक्त)	35/-	400/-

प्राप्ति स्थान :—

दि लाइफ़ नैचुरल

गणेशनगर, पुदुकोट्टै–६२२००१

(तमिल नाड़)

गतवर्षों की जिल्दें

दि लाइफ़ नेचुरल (हिन्दी विभाग) की सन् 1976 से 1985 तक की कुछ जिल्दें उपलब्ध हैं। प्रत्येक जिल्द में वर्ष भर के जनवरी से दिसम्बर मास तक के सभी पत्रिकायें शामिल हैं।

सभी जिल्दों में समय समय पर छपे लेखों में बहुत सी सामग्री मौजूद है जिन्हें स्वास्थ्याभिलाषी स्थायी तौर पर अपनी लायब्रेरी में रखना पसन्द करेंगे।

प्रत्येक जिल्द का मूल्य रु. 15/—

इसके अतिरिक्त ग्राहकों को रु. 3/—रजिस्टर्ड डाक खर्च के लिए देने होंगे।

जिल्दें निम्नलिखित पते पर उपलब्ध हैं।

1) प्रबन्धक, दि लाइफ़ नेचुरल, गणेशनगर, पुदुक्कोट्टै [पिन. 622001]

2) एस. स्वामिनाथन्, 358, लक्ष्मीबाईनगर, नई दिल्ली [पिन. 110023]

Phone: 2659

Sarma's Sanatorium Press,
Ganeshnagar, Pudukkottai-622 001

Books From Nature-Cure Publishing House

PRATICAL NATURE-CURE

K. Lakshmana Sarma

13th Edition Crown quarto 22×18cms.

744 Pages Rs. 140/- U.S. $ 20 £ 10

Logically he argues that all diseases, from the common cold to the dreaded cancer, have their basis in the internal uncleanliness—a toxaemic condition of the body, caused by defective elimination arising from adoption of wrong, unhygienic habits of living.

In respect of diagnosis, the author explains that merely naming the symptom-complex will not do, that the diagnostic tests commonly used in allopathy could even cause their own hazards.

In every case, the author takes particular care to explain to the readers as to how the various disease conditions could be prevented sensibly and as to how, in the case of those who may have already developed any of them, the adoption of Nature-Cure methods in the non-violent way, could help to recover health.

The matter that is contained in over 700 pages in Crown 1/4 size in this book is all the outcome of the author's *Swaanubhava* and not a mere theoretical outpouring as seen in may other books of this type.

— *Organiser, New Delhi*

"It is still the most authoritative and comprehensive book on the subject.

The author believes that everyone can and should treat himself at home without going to the so called naturopaths.

The most important chapter in the book is the one on "vital economy" which is the author's special contribution to the theory of nature cure. The book is printed in bold type which makes for easy reading.

The exhausitive glossary and index make this book a healthy companion and guide for both the laymen and and practising naturopaths". (*Tribune, Chandigarh*)

"Nature cure too has of late received increasing attention. It is as old as nature itself and finds mention in Indian scriptures. Acharya Lakshmana Sarma, author of the book under review was credited with having revived it and made it popular. He gave a firm and scientific basis for the principles and practice of nature cure. The exhaustive treatise covering all possible ailments that may afflict a human being with the practical nature cure methods of treating them represent his efforts in this direction. Atleast five new chapters have been included in this edition, which seek to explain in detail the basic cause of diseases the inter relation between food and energy, the correct methods of diagnosis and the basic nature cure methods. This volume should serve the purpose of kindling the interest of all to follow the simple rules of the system of nature cure and get relief from any ailment through preventive and promotive health measures". (*The Hindu, Madras*)

"In this book, the author has taken much pain to explain how in modern world, an individual can live in tune with nature's laws and how by the adoption of a basic philosophy of life it is possible to prevent diseases. The book is a ready-reckoner for every health seeker".

—*The Indian Express, Madurai*

MOTHER & CHILD CARE

Revised and enlarged 2nd Edition

By. SATHYAH & VIJAYAGOPALAN

Dose pregnancy mean any setback in the health of a woman.

How to maintain and improve the health of the mothre-to-be during pregnancy.

Are there any special pre-natal and post natal exercises?

How to have a safe, natural and easy delivery.

How to treat the new-born's minor ailments naturally, all by yourself athome.

These and many othre intricate points, are dealt in detail.

A handbook on MOTHER AND CHILD CARE, the natural way.

Rs. 15/- No V.P.P. Add Re 1, for Recorded Delivery

Books Under Print

EATS & DRINKS
—Sathyah Vijayagopalan

CURE OF CONSTIPATION & DYSPEPSIA
—K. Lakshmana Sarma

PRANAYAMA
—K. Lakshmana Sarma

Published by

Phone : 2659

Nature-Cure Publishing House

Ganeshnagar, Pudukkottai—622 001

NATURAL CURE OF EYE DEFECTS

Prof: L. KAMESVARA SARMA MA., N.D.

Maintaining Eye Health perfectly is an easy thing under Nature-Cure. One need not necessarily wear glasses and contact lenses to rectify eye problems or undergo any surgery. How to adopt nature-cure methods in treating all types of Eye ailments are discussed in detail. Diets baths, packs, corrective exercises are clearly illustrated.

Rs. 10 No V.P.P. for Recorded Delivery add Re. 1

FASTING CURE AND VITAL ECONOMY

Fourth Edition

K. LAKSHMANA SARMA

What is fasting? Is it necessary for all or just the ailing? Do you have to starve when you fast? When to fast and when not to? How fasting helps cure a disease. How fasting brings you back to health. What is Vital Economy? All questions answered in detail

A guide to health for the layman and a te'escope for the searching mind.

Rs. 10/- No V.P.P. Send Re 1. more for Recorded Delivery

Herbal Foods

Dr. N. RAMASWAMI PILLAI, F.I.I.N.T.

Herbs can help a great deal in curing any disease whether a common cold or the dreaded cancer. This book deals in detail about more than 120 herbs, greens and grasses. Methods of identifying them by illustration, their local names, their characteristics, their general and specific uses in treatment of diseases have all been discussed in simple language.

Rs. 45/- 214 Pages 22×18cms.
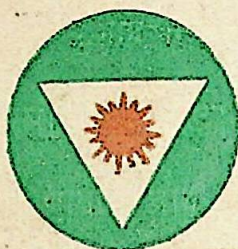
कृपया इस पुस्तिका का दूसरा भाग भी अवश्य पढ़ें —

प्राकृतिक चिकित्सा — सिद्धान्त और प्रयोग

इस पुस्तक में प्राणायाम, वायु-स्नान, सूर्य-स्नान, मेरुदण्ड-स्नान, कटि-स्नान, अहिमक एनीमा आदि प्राकृतिक चिकित्सा की उपयोगी उपचार विधियाँ सरल भाषा में समझाई गयी हैं। मांसाहार स्वास्थ्य के लिए हानिकारक क्यों है और स्वास्थ्य प्रेमी अंडे भी क्यों न खायें तथा शुद्ध सात्विक प्राकृतिक आहार का सेवन करें तो बिना दवा के हम जिस प्रकार स्वास्थ्य-सुखी रह सकते हैं— इसका विस्तृत विवरण इस पुस्तक में आप पायेंगे।

मूल्य : पन्द्रह रुपये
डाक खर्च : एक रुपया